CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

38498

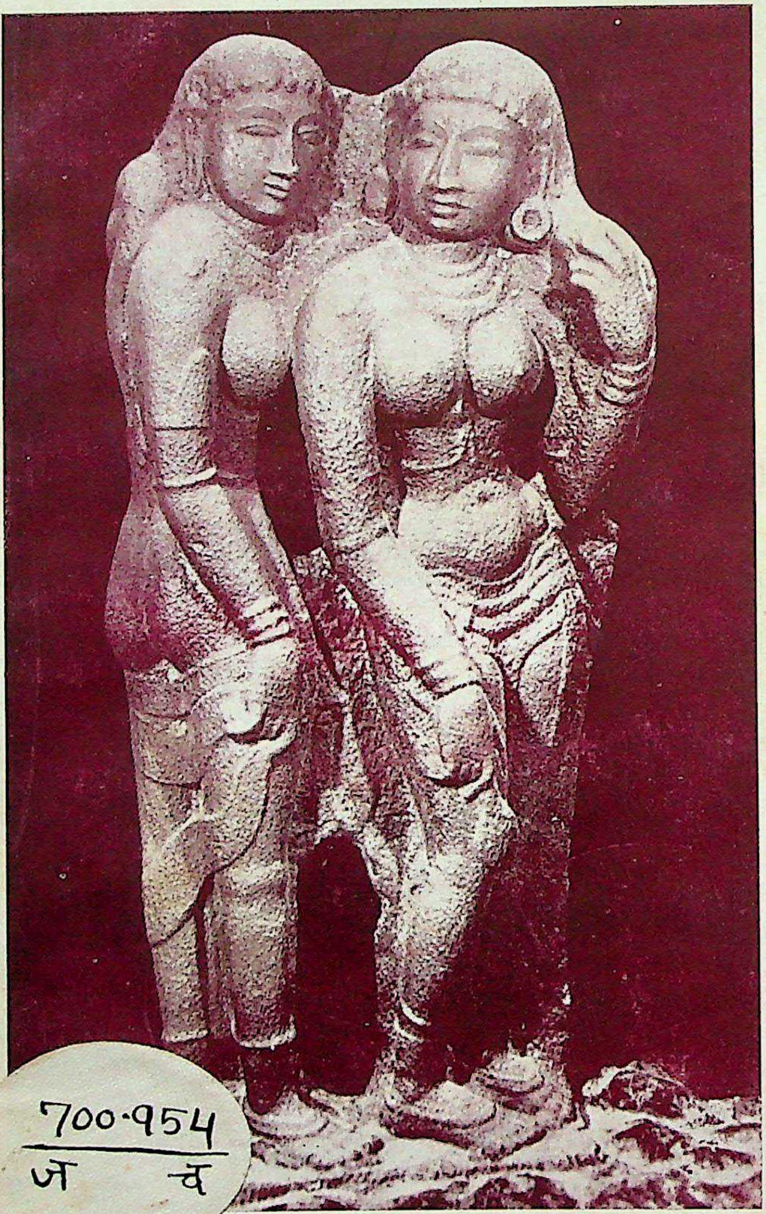

चोल और उनकी कला

700·954
ज च

मनोरमा जौहरी

3852
38408

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

700·954
ज च

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No.__________

Book No.__________

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय
क्रम 3848
प्राप्ति 19.12.69
State Museum, Library

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चोल और उनकी कला

मनोरमा जौहरी, एम. ए., पीएच. डी.,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

State Museum, Library, Lko.
3848
12-12-
3848
12.12.69

भारतीय विद्या प्रकाशन
वाराणसी, १९६९.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशक
भारतीय विद्या प्रकाशन,
पोस्ट बॉक्स १०८, कचौड़ी गली,
वाराणसी–१

700.954
ज च

© मनोरमा जौहरी

प्रथम संस्करण, १९६९
मूल्य ६.००

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
क्रम 3848
प्राप्ति तिथि 19/12/69
State Museum, Library, Lko.

मुद्रक
नरेन्द्र भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस,
त्रिलोचन, वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमश्रद्धेय

गुरुजी

(महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथजी कविराज,

पद्मविभूषण, सर्वतंत्र सार्वभौम)

को

सादर समर्पित

क्रम 3848
प्राप्ति तिथि 19.12.69
State Museum, Library, Lko

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

आमुख	तीन
लेखकीय	चार
पृष्ठभूमि	पाँच
राजनैतिक इतिहास	बारह
कला	बाईस
सहायक ग्रंथ-सूची	छत्तीस
अनुक्रमणिका	अड़तीस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र-सूची

चित्रसंख्या	विवरण	पृष्ठ
एक	पल्लव आले की आकृति	सात
दो	चोल आले की आकृति	सात
तीन	पल्लव कुड्डु	सात
चार	चोल कुड्डु	सात
पाँच	पल्लव स्तंभ	आठ
छः	चोल स्तंभ	आठ
सात	पल्लव दीवारगीर	नौ
आठ	पल्लव व चोल विशेषताओं से युक्त दीवारगीर	नौ
नौ	चोल दीवारगीर	नौ
दस	नागर शिखर	दस
ग्यारह	द्राविड़ शिखर	दस
बारह	बृहदीश्वर मंदिर, तञ्जौर	तेरह
तेरह	बृहदीश्वर मंदिर, गंगैकोण्डचोलपुरम्	पन्द्रह
चौदह	बृहदीश्वर मंदिर, गंगैकोण्डचोलपुरम्	उन्नीस
पन्द्रह	ऐरावतेश्वर मंदिर, दारासुरम्	इक्कीस
सोलह	सरस्वती, गंगैकोण्डचोलपुरम्	तेईस
सत्रह	बृहदीश्वर मंदिर, तञ्जौर, नक्शा	पचीस
अट्ठारह	ऋषि-पत्नी, गंगैकोण्डचोलपुरम्	छब्बीस
उन्नीस	विष्णु, गंगैकोण्डचोलपुरम्	सत्ताइस
बीस	नवग्रह, दारासुरम्	अट्ठाइस
इक्कीस	रथ, दारासुरम्	तीस
बाईस	राजराज और गुरु, तञ्जौर	इकतीस
तेईस	लक्ष्मी की काँस्य-प्रतिमा	तैंतीस
चौबीस	नटराज की काँस्य-प्रतिमा	चौंतीस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आमुख

अपने देश में चोल वंश ने राजनीतिक उन्नति के साथ-साथ कला और संस्कृति की भी बहुत समृद्धि की। यों तो चोल कला पल्लव शैलियों का चरमोत्कर्ष है, परन्तु उसे पल्लव शैलियों का बढ़ाव मात्र नहीं कहा जा सकता। चोलों ने पाषाण या धातु मूर्तियों अथवा वास्तु में उस पुरानी परंपरा को नए-नए रूप दिए। हम यह कह सकते हैं कि दक्षिण भारतीय कला का सर्वोच्च शिखर चोलकालीन अभिव्यक्तियों में है। ये अभिव्यक्तियाँ बाद में भी अनेक शतियों तक थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ चलती रहीं। चोल-शक्ति का विस्तार दक्षिण-पूर्वी एशिया के अनेक देशों में हुआ। उन केंद्रों में इसके साथ-साथ भारतीय संस्कृति और कला का प्रसार हुआ जिससे भारत समेत समूचा यह क्षेत्र एक सूत्र में बँध गया।

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि सौ० डॉ० मनोरमा जौहरी ने चोल और उनकी कला नामक एक सुन्दर पुस्तक हिंदी में तैयार की है। इसमें उन्होंने बहुत सी उपादेय सामग्री बहुत अच्छे ढंग से सँजोई है। हिंदी में शास्त्रीय ग्रंथों की बड़ी आवश्यकता है। उनके अभाव में हम अंग्रेजी के मुखापेक्षी रहे हैं। अंग्रेजी से पिंड छुड़ाना और अपने देश में अपनी भाषा के द्वारा ज्ञान सुलभ कराना हमारा कर्तव्य है। उपर्युक्त पुस्तक से इसी कर्तव्य की पूर्ति होती है। यह पुस्तक चोलकालीन कला पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालेगी। दक्षिण पूर्वी एशिया के अध्ययन में भी, आधार रूप में, यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपादेय सिद्ध होगी।

मैं सौ० मनोरमा जी को इस हेतु साशिष बधाई देता हूँ।

का० हि० वि०

२४-७-१९६९

राय कृष्णदास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेखकीय

प्राचीन भारत, और विशेषरूप से दक्षिण भारत, के अतीत को गौरवयुक्त बनाने में चोलों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। एतदर्थ हम उन अनजाने और विलक्षण प्रतिभासम्पन्न कलाकारों के प्रति ऋणी हैं, जिन्होंने सफलता व कुशलता के साथ पत्थर में जीवन डाला और अनेक भव्य उदाहरणों का निर्माण किया तथा ऋणी हैं उन महान् चोल नरेशों के प्रति, जिन्होंने कला को प्रश्रय और प्रोत्साहन देकर, कलाकारों की कल्पना को साकार रूप दिया। कुछ मंदिर तो इतने आकर्षक हैं कि तत्कालीन सुविधाओं और साधनों को देखते हुए यह कहने को जी चाहता है कि अगर ताजमहल को विश्व का एक आश्चर्य माना जाता है तो ऐसा प्रत्येक उदाहरण अनेक ताजमहलों से टक्कर लेने की क्षमता रखता है।

पद्मभूषण राय कृष्णदास जी, निदेशक, भारत कला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने अस्वस्थ होने पर भी आमुख लिखने की महती अनुकम्पा की है। लेखिका श्रद्धयावनत होकर, उनके शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ और दीर्घायु की कामना करती है।

चोलों के राजनैतिक इतिहास और उनकी कला का सर्वेक्षण करनेवाली इस पुस्तिका को प्रस्तुत रूप देने में जिन ग्रंथों से मुझे सहायता मिली है, उनके विद्वान् लेखकों के प्रति मैं आभारी हूँ और मेरा हार्दिक धन्यवाद है,

डाइरेक्टर जनरल, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इण्डिया, नई दिल्ली को, जिन्होंने पुस्तिका के चित्रों को छापने की अनुमति दी,

कैपिटल ब्लॉक वर्क्स, इलाहाबाद तथा सरस्वती ब्लॉक मेकर्स, वाराणसी को, जिन्होंने समय पर ब्लॉक तैयार कर दिये,

चित्रकार श्री सियाराम को, जिन्होंने रेखाचित्र तथा आवरण बनाया,

श्री जगन्नाथ प्रसाद, डॉ. कृष्ण कुमार झवेरी तथा डॉ. चन्द्र भूषण मणि त्रिपाठी को, जिन्होंने अनुक्रमणिका बनाई,

भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी, के मालिकों तथा कर्मचारियों को, जिन्होंने अत्यल्प समय में इसे छापा, और

श्री किशोर चन्द जैन, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी को, जिन्होंने इसे प्रकाशित किया।

विभिन्न प्रकार के सुझावों और सहयोग के लिये डॉ. के. के. सिनहा, रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति व पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, तथा मोहन जी चित्रकार, मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। अपने पति श्री ओम् प्रकाश जौहरी तथा बेटी ऋचा के विषय में कुछ कहना औपचारिक होगा। वस्तुतः मेरा प्रयास उन्हीं की प्रेरणा का परिणाम है।

भैरोनाथ, वाराणसी
जून, १९६९.

मनोरमा जौहरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठभूमि

प्राचीन भारतीय पुरातात्त्विक अवशेषों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ की अधिकांश कलाकृतियाँ धार्मिक हैं, यद्यपि अधार्मिक भवनों को बनाने में भी यहाँ के कारीगरों ने अपने कला-कौशल का परिचय दिया[१] और साहित्यिक प्रमाणों में भी सुन्दर सुन्दर भवनों के वर्णन मिलते हैं। भारत की प्राचीन मूर्त्तिकला, स्थापत्य कला और चित्रकला का संबंध यहाँ के प्रमुख धर्मों—बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा ब्राह्मण धर्म, से रहा है।

बौद्ध धर्म से संबंधित प्रमुख भवन स्तूप, चैत्यगृह तथा विहार हैं। अपने प्रारंभिक रूप में स्तूप किसी धर्मविशेष की विशेषता नहीं माने जाते थे, ऐसा महापरिनिब्बानसुत्त से ज्ञात होता है, जिसके अनुसार एक बार भगवान् बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनंद से कहा कि उनके महापरिनिर्वाण के बाद, उनके शारीरिक अवशेषों के ऊपर किसी चौमुहानी पर उसी प्रकार स्तूप निर्मित किया जाय, जिस प्रकार किसी चक्रवर्ती राजा के लिए किया जाता है।[२] बौद्ध धर्म के दो प्रमुख सम्प्रदाय थे—हीनयान और महायान। इनमें हीनयान अपेक्षाकृत पहले का है। दोनों का एक प्रमुख अंतर यह है कि हीनयान सम्प्रदाय में बुद्ध की मूर्तिपूजा निषिद्ध थी और उनका अंकन प्रतीकों के रूप में किया गया था, जबकि महायान में उनकी मानवाकार मूर्तियाँ बनाई गयीं। स्तूप बुद्ध के लिए प्रयुक्त विभिन्न प्रतीकों में एक माना गया। कालांतर में स्तूपों का संबंध बौद्ध धर्म से ही क्यों रह गया, इसके कारण अस्पष्ट हैं।

चैत्यगृह का तात्पर्य उन भवनों से है, जो बौद्धधर्मावलम्बियों के द्वारा सामूहिक पूजा के लिए प्रयुक्त किये जाते थे। उन्हें ऐसा नाम इसलिए दिया गया, क्योंकि इनके भीतरी भाग में चैत्य अथवा स्तूप की आकृति बनाई जाती थी। ये हॉल आयताकार हैं, जिनका एक सिरा गोलाई लिए हुए (apsidal) है।

१. विदेशियों के विवरण के अनुसार मौर्यकालीन राजप्रासाद मेम्नोनियन सूसा (Memnonian Susa) और एकवताना (Ecbatana) से बढ़कर था। फाह्यान (Fa-hien) अशोक के महल से इतना प्रभावित हुआ था कि उसने उसे देवनिर्मित बताया। लेकिन इस प्रकार के अधार्मिक उदाहरण, धार्मिक उदाहरणों की अपेक्षा, बहुत कम हैं और इसके कारण स्पष्ट नहीं हैं। Rowland : *The Art and Architecture of India*, p. 40; *The Age of Imperial Unity*, p. 86.

2. Sircar : *Studies in Early Buddhist Architecture of India*, p. 3. शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित विभिन्न प्रकार के श्मशानों को इनका पूर्वरूप माना गया है। देखिए काणे: हिस्ट्री ऑफ़ धर्मशास्त्र, भाग ४, पृ. २४७ और आगे; अग्रवाल: भारतीय कला, पृ. १५६-७.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनके सामने का भाग बड़ी सुन्दरता के साथ अलंकृत है। स्तंभावली के द्वारा ये भवन तीन भागों में विभक्त किये गये हैं। बीच का भाग सामूहिक पूजा के लिए और अगल-बगल का भाग प्रदक्षिणा के लिए था। हीनयान चैत्यगृहों में गोलाई वाले भाग (apsidal end) में बुद्ध के प्रतीक के रूप में स्तूप हैं और महायान चैत्यगृहों में स्तूप तथा बुद्ध की मानवाकार मूर्ति, दोनों ही। प्रारंभिक चैत्यगृह शैलोत्खनित (rock-cut) हैं।

बौद्ध विहारों का तात्पर्य संघाराम से है, जिनमें बौद्ध भिक्षु रहते थे। ये शैलोत्खनित तथा निर्मित (structural) दोनों ही प्रकार के हैं। शैलोत्खनित विहारों के केन्द्र में एक बड़ा हॉल है जिससे होकर कमरों में जाया जाता है। निर्मित विहारों में बड़े हॉल का स्थान आँगन ने ले लिया है। महायान विहारों में एक प्रकोष्ठ में बुद्ध की मूर्ति भी मिलती है।

जैन धर्म से संबंधित उदाहरण के रूप में स्तूप, विहार और मन्दिर उल्लेखनीय हैं। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, प्रारम्भ में स्तूप केवल बौद्ध धर्म से ही संबंधित नहीं थे और जैन धर्म से संबंधित स्तूपों की भी सूचना मिलती है।[१] जैन विहारों के उदाहरण के रूप में आजीविकों[२] के उपयोग के लिए बनवायी गयी मौर्य गुफाएँ तथा उदयगिरि व खण्डगिरि की गुफाएँ उल्लेखनीय हैं। जैन मंदिर शैलोत्खनित (उदाहरणार्थ बादामी की चौथी गुफा) और निर्मित दोनों प्रकार से बनाये गये थे।

ब्राह्मण धर्म से संबंधित उदाहरणों में रथ (एकाश्म मंदिर–monolithic shrines), मण्डप तथा मंदिर प्रमुख हैं। धार्मिक भवन होने के कारण, हिन्दू मंदिर तत्तद्देश और तत्तत्काल में प्रचलित कर्म-काण्ड के अनुरूप बनवाये जाते थे। मन्दिर के लिए अनेक शब्द प्रयुक्त मिलते हैं जैसे देवकुल, देवागार, देवालय, देवतायतन, देवगृह और देवस्थान इत्यादि। स्पष्ट है कि इन सभी शब्दों का तात्पर्य यह है कि मन्दिरों की कल्पना देवताओं के निवास स्थान के रूप में की गयी थी।[३] मन्दिर की तुलना मानव शरीर से भी की गई है। पत्थर, पहाड़, लकड़ी, धातु इत्यादि जिस सामग्री का उपयोग मन्दिर के निर्माण कार्य के लिए किया गया हो उसकी तुलना मानव शरीर के अस्थिपंजर से, शैली पर आधारित विभिन्न आकारों और प्रकारों की तुलना मांस अथवा शरीर के आकार से और मन्दिर के अलंकरण के उद्देश्य से बनाई गई, कलात्मक आकृतियों की तुलना वस्त्राभूषण से की गई है। सुन्दर से सुन्दर शरीर को जीवित रहने के लिए आत्मा की आवश्यकता होती है और इस उद्देश्य से मन्दिरों में देवताओं की प्राण-प्रतिष्ठा विधिपूर्वक की जाती थी।[४]

सामान्य रूप से मन्दिर में कई भाग होते हैं—गर्भगृह (sanctum cella) अर्थात् वह भाग

1. *The Age of Imperial Unity*, p. 487.
२. एक जैन सम्प्रदाय।
3. "The term 'gods' houses' is popularly applied even at the present day in South India to slab-built dolmen-like hero-shrines. It can hardly be doubted that there exists some connection between temples and tombs."
   Coomaraswamy : *History of Indian and Indonesian Art*, p. 47.
4. Gravely and Ramchandran : *Historic India and Her Temples*, p. 1.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जहाँ पर आराध्य की मूर्ति अथवा उसके प्रतीक की स्थापना की जाती है। गर्भगृह के सम्मुख स्थित भाग क मंडप कहा गया है। यदि एक से अधिक मंडप हों तो उन्हें अर्धमंडप, मंडप अथवा महामंडप की संज्ञा दी गई है। मंडप को गर्भगृह से मिलाने वाला भाग अंतराल (vestibule) होता है। मन्दिर जिस चौकी पर निर्मित है उसे जगती (plinth) कहते हैं। स्थान की भिन्नता के अनुसार इन भागों के नाम और इनकी बनावट में भी भिन्नता मिलती है, यद्यपि अपने देश के विस्तार तथा लम्बे इतिहास को देखते हुए मंदिरों की ये विभिन्नताएँ अत्यल्प हैं। उदाहरणार्थ उड़ीसा के मन्दिरों का उल्लेख किया जा सकता है, जिनके विभिन्न निर्माता अंग है देउल अथवा श्री मंदिर (sanctum), जगमोहन (pillared hall) और नाट मन्दिर ('Dancing hall' या 'the Hall of Offerings')।

चोल मंदिरों पर पल्लव वास्तु कला का विशेष प्रभाव था, यद्यपि पल्लव-विशेषताओं को कुछ परिवर्तन के साथ, चोल कलाकारों ने अपनाया। उदाहरणार्थ, ताखे या आले (niches) की आकृति, जिसका प्रयोग दीवालों के अलंकरण के लिये किया गया है। पल्लव आले विस्तृत हैं और चोल आले अपेक्षाकृत संकीर्ण, जैसा कि चित्र संख्या १ व २ से स्पष्ट हो जायगा।

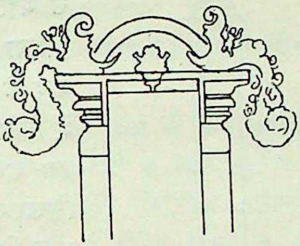

चित्रसंख्या १.
पल्लव आले की आकृति

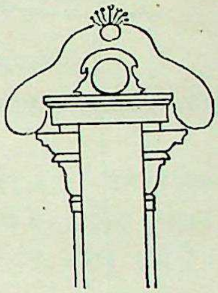

चित्रसंख्या २.
चोल आले की आकृति

भवनों के बाह्य अलंकरण में कुडु की आकृति बनाई गयी है। इसका ऊपरी भाग, पल्लव उदाहरणों में, shovel-headed finial है, जिसका स्थान चोल उदाहरणों में सिंह शीर्ष ने ले लिया है (चित्र संख्या ३ व ४)।

चित्रसंख्या ३.
पल्लव कुडु

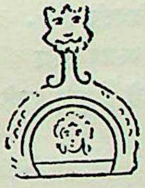

चित्रसंख्या ४.
चोल कुडु

इसी प्रकार स्तंभों और उनके शीर्ष भाग की बनावट में भी अंतर है जैसा कि चित्र संख्या ५ व ६ से स्पष्ट हो जायगा। दीवारगीरों (brackets) का अंतर भी उल्लेखनीय है (चित्र ७, ८, ९)।

पल्लव-द्वारपाल दो हाथ वाले हैं और प्रारम्भिक चोल उदाहरणों में भी इन्हीं विशेषताओंवाले द्वारपाल हैं। परवर्ती उदाहरणों में उन्हें चार हाथवाला बनाया गया है।

बाह्य अलंकरण के लिये कोष्ठ-पंजर और कुम्भ-पंजर की आकृतियाँ बड़े बड़े उदाहरणों में बनाई गयी हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिण भारत के विमान की बनावट विशेष प्रकार की है। यह पिरामिड के आकार का अर्थात् नीचे चौड़ा और ऊपर क्रमशः संकीर्ण बनाया गया है। अलंकरण के लिए कुडु (*caitya*—window motif) का प्रयोग किया गया है। गोपुरम् अर्थात् उन्नत प्रवेश द्वार बनाये गये हैं और कुछ उदाहरणों में कल्याण मण्डप है, जहाँ मन्दिर के प्रमुख देवता और उससे संबंधित देवी की मूर्तियाँ होती थीं। कुछ उदाहरणों में प्रमुख देवी के लिए भी साथ ही में अलग मंदिर भी बनवाये जाते थे।

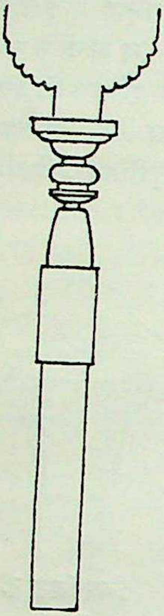

चित्रसंख्या ५.
पल्लव स्तंभ

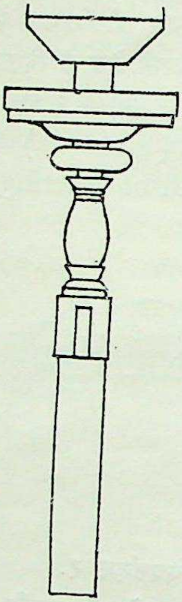

चित्रसंख्या ६.
चोल स्तंभ

मन्दिरों के शिखर भी स्थापत्य कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। प्रारम्भिक मन्दिरों की छत सपाट अथवा चिपटे शिखर से युक्त है, जबकि अपेक्षाकृत बाद के मन्दिरों में शिखर ऊँचे हैं। जिन मन्दिरों में विभिन्न अंगों पर भी शिखर बनाये गये हैं वहाँ इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि गर्भगृह का शिखर सबसे अधिक ऊँचा होना चाहिए। शिखर और विमान में अंतर बताया गया है।[1]

बनावट के आधार पर मन्दिरों की तीन शैलियों—नागर, द्राविड़ और वेसर, की चर्चा शिल्पशास्त्र में मिलती है। मानसार[2] के अनुसार नागर शैली के मन्दिर के शिखर चौकोर अथवा आयताकार होते हैं और इनके ऊपर दो या तीन स्तूपिकाएँ होनी चाहिएँ।[3]

1. "*Śikhara* means literally 'that which bears the *śikhā*'. *Sikhā* means either a flame or an upright tuft of hair, from which *śikhara* comes to mean 'head'. The tower over a shrine is usually surmounted by some form of *śikhara* or head, bearing a *stūpi* or finial, sometimes called a *śikhara*, but the tower iteself is a *vimāna*, whatever its shape, not a *śikhara*." Gravely and Ramchandran : The Three Main Styles of Temple Architecture Recognised by the Śilpaśastra, *Bulletine of the Madras Government Museum*, New series, Vol III, pt. I, General section, p. 2.

२. यह कृति ई. ५००-७०० के बीच में रक्खी गई है।

३. मूलादिस्तूपिपर्यन्तं वेदाश्र चायताश्रकम् ॥
द्व्यश्रं वृत्ताकृति वाप्य ग्रीवादिशिखराकृतिः।
स्तूपिकात्रयसंयुक्तं द्वयं वा चैकमेव वा॥
चतुरश्राकृतिं (ति) यस् (यत्) तु नागरं तत्प्रकीर्तितम्। अध्याय १८, ४५-७.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्तूपि से नीचे के भाग की बनावट का गोल होना वेसर शैली की विशेषता है, [1] जबकि द्राविड़ शिखर अष्टाश्र अथवा आठ पहल वाले, षष्ठाश्र अथवा छह पहल वाले होते हैं। [2] इन तीनों शैलियों का वर्णन सुप्रभेदागम में भी मिलता है जिसके अनुसार नागर शैली की बनावट नीचे से लेकर ऊपर तक चौकोर होती है, द्राविड़ शैली में कंठ से ऊपरी भाग तक आठ पहल वाली होती है और वेसर में कंठ से लेकर ऊपर तक की

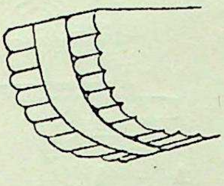

चित्रसंख्या ७.
पल्लव दीवारगीर (brackets)

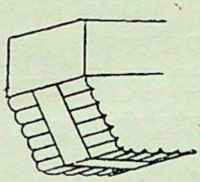

चित्रसंख्या ८.
पल्लव व चोल विशेषताओं से युक्त दीवारगीर

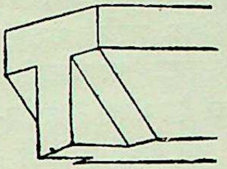

चित्रसंख्या ९.
चोल दीवारगीर (brackets)

गोल होती है। [3] शिल्परत्न में भी नागर, द्राविड़ और वेसर की विशेषताओं का वर्णन है। [4] इन विभिन्न शैलियों का सम्बन्ध विभिन्न देवताओं, गुणों और दिशाओं के साथ स्थापित किया गया है। लेकिन वर्त्तमान उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन शैलियों को भौगोलिक सीमाओं में बाँधना संभव नहीं है। उदाहरण के लिए चालुक्यों की राजधानी पट्टडकल का उल्लेख किया जा सकता है जहाँ थोड़े ही समय के अंतर पर विभिन्न शैली वाले मंदिरों का निर्माण किया गया।

वर्त्तमान अवशेषों के आधार पर मानी गयी मन्दिरों की दो शैलियाँ—द्राविड़ (दक्षिणी) और इण्डो-

१. मूलाग्रं वृत्तमाकारं तद्वृत्तायतमेव वा ॥
ग्रीवादिस्तूपिपर्यन्तं युक्ताथो (क्त्याथ) तद्युगाश्रकम् ।
वृत्तस्याग्रे द्वयश्रकं तद्वेसरी (रं) नामकं भवेत् ॥ वही, ४७-८.

२. मूलात्स्तूपिपर्यन्तं अ (चा) ष्टाश्रकं वा षडश्रकम् ।
तदग्रं चायतं वापि ग्रीवस्याथो युगाश्रकम् ॥
पूर्ववच्चोर्ध्वदेशं स्याद् द्राविडं परिकीर्तितम् । वही, ४९-५०.

३. नागरं द्राविडं चैव के (वे) सरं च त्रिधा स्मृतम ।
कण्ठादारभ्य वृत्तं यत्तत्के (वे) सरमिति स्मृतम् ॥
ग्रीवमारभ्य चाष्टाश्रं विमानं द्रविड़ाख्यकम् ।
सर्वं वै चतुरश्रं यत्प्रासादं नागरं त्विदम् ॥ अध्याय, ३०, ४१-२.

४. मूलादाशिखरं युगाश्ररचितं गेहं स्मृतं नागरं
मूलादाशिखरक्रियं षडुरगाश्रोद्भेदितं द्राविड़म् ।
मूलाद्वा गलतोऽथवा परिलसद्वृत्तात्मकं वेसरं
तेष्वेकं पृथगात्तलक्ष्म सुविदध्यादात्मनः सम्मतम् ॥ अध्याय, १६,५०-५१. मानसार, सुप्रभेदागम तथा शिल्परत्न के ये अंश ग्रैवले और रामचंद्रन द्वारा पूर्वोल्लिखित कृति में उद्धृत किये गये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्यन (उत्तरी) हैं ।[1] एक ही स्थान पर इन दोनों का प्रयोग किया गया मिलता है । जैसा कि पर्सी ब्राउन ने बताया है, भारत के पाँच में से एक भाग में द्रविड़ शैली प्रचलित थी और शेष चारों में इण्डोआर्यन, उत्तरी भारतीय अथवा नागर शैली ।[2] संलग्न चित्र से दोनों की बनावट का अंतर स्पष्ट हो जायगा ।

भारतीय मंदिर केवल धार्मिक जीवन के ही केन्द्र नहीं थे, अपितु सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनैतिक जीवन के भी । विशेष उत्सवों और अवसरों पर दर्शनार्थियों के एकत्रित होने की सहज कल्पना की जा सकती है । मंदिरों के निर्माण-काल में अनेक लोगों को व्यवसाय मिल जाता था और मंदिरों के निर्माण कार्य के पूरा होने पर, पुजारियों और देव-दासियों तथा उनकी संगत करनेवालों को । इतिहास के पुनर्निर्माण की दृष्टि से भी ये कलाकृतियाँ महत्वपूर्ण हैं । मंदिरों में अंकित विषय तत्कालीन जीवन के विषय में सूचना देते हैं । अनेक मंदिरों में अभिलेख भी खुदे हुए हैं, जो भवनों की तिथि पर प्रकाश डालते हैं । जिन अभिलेखों में राजाओं के उल्लेख हैं, उनकी महत्ता के विषय में दो मत नहीं हो सकते । मंदिर–विद्यालय शिक्षा के केन्द्र के रूप में सुविख्यात हैं । विभिन्न प्रकार के प्रशासकीय विषयों की चर्चा व विवादों का निर्णय भी कभी-कभी यहीं किया जाता था । राजाओं के प्रश्रय के बिना इन विशाल कलाकृतियों का निर्माण संभव नहीं था और आज जितने भी प्राचीन अवशेष हैं, उसका अधिकांश श्रेय प्राचीन भारत के कला-प्रिय राजाओं को है । नवीं से तेरहवीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में राज्य करनेवाले चोल शासक शैव धर्म को माननेवाले थे, अतः इस समय के

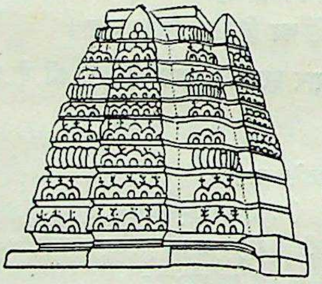

चित्रसंख्या १०.
नागर शिखर, पापानाथ मंदिर, ऐहोल, पर आधारित

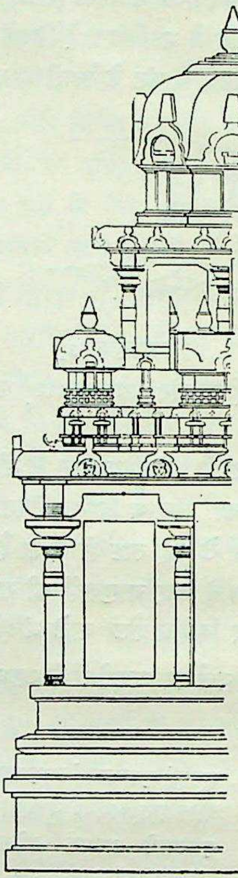

चित्रसंख्या ११.
द्राविड़ शिखर, पल्लव मंदिरों पर आधारित

1. "Considering the size of the land, Indian temple architecture is remarkably uniform, but authorities distinguish two chief styles and numerous schools. The Northern or Indo-Āryan style prefers a tower with rounded top and curvilinear outline, while the tower of the Southern or Dravidian style is usually in the shape of a regular truncated pyramid." Basham : *The Wonder That Was India*, p. 357.

2. "It should be also noted that the entire area in which Dravidian temples may be found comprises only one fifth of the country as a whole, the Indo-Aryan being distributed over the remainder and therefore buildings of the later type are more numerous and more diversified." *Indian Architecture*, p. 63.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकांश उदाहरण शैव धर्म से सम्बन्धित हैं, यद्यपि इस वंश के कुछ राजाओं ने, धार्मिक सहिष्णु होने के कारण, अन्य धर्मों से सम्बन्धित उदाहरणों के निर्माण में भी रुचि ली।

भारत के मंदिरों में दक्षिण भारत के मंदिर अपना विशेष स्थान रखते हैं और दक्षिण के मंदिरों में चोल राजाओं द्वारा बनवाये गये मंदिर। इसी कारण गोत्ज़ ने तो चोल-युग को स्वर्ण युग बताया है।[1] जैसा कि हम आगे देखेंगे, राजराज प्रथम द्वारा तंजौर में बनवाया गया बृहदीश्वर मंदिर अपने समय का विशालतम मंदिर है। इस मंदिर की विशालता, भव्यता और सुन्दरता को देखते हुए यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि अगर चोलों के समय के अन्य अवशेष न भी होते तो यह मंदिर अकेले ही, उनकी कलात्मक रुचि का परिचय देने के लिए पर्याप्त है। चोल मंदिर स्थापत्य कला की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण हैं हीं, इनके अलंकरण के लिए प्रयुक्त की गई मूर्तिकला और चित्रकला के कारण भी ये भारतीय कला की अमूल्य निधि हैं। इस संबंध में चोलों के समय की काँसे की कलाकृतियों का विशेषरूपेण उल्लेख करना स्थानोचित् होगा। काँस्य कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण चोल-कलाकारों द्वारा बनाये गये थे, जिसका चरमोत्कर्ष शिव नटराज की मूर्तियों में देखने को मिलता है।[2] इनकी चर्चा आगे की जायगी।

1. *India*, p. 178.
2. "The highest point taught by this school is ofcourse the Nataraja (sic) with its balance, rhythm, and the superb movements of arms and the hands. The highly conventionalised language at gesture in which the south rapidly excelled and which earned the admiration at the great French sculptor, Auguste Rodin, is pressed into the service of this super-human, poetic exaltation." Goswami : *Indian Temple sculpture*, p. 30.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजनैतिक इतिहास

दक्षिण भारत के इतिहास में चोल वंश का अपना अलग महत्व है। इनकी उत्पत्ति, इनके मूल-स्थान और प्रारंभ आदि के विषय में निश्चित सूचना का अभाव है। महाभारत में अनेक स्थानों में इनका उल्लेख किया गया है[1] लेकिन इस महाकाव्य के विभिन्न अंशों की प्रामाणिकता संदिग्ध है। अशोक के अभिलेखों में विभिन्न राजाओं और राजवंशों के साथ इनका भी उल्लेख मिलता है।[2]

साहित्यिक प्रमाणों के अनुसार चोल वंश का प्रारंभिक शासक करिकाल था, जो अनेक दृष्टियों से एक प्रसिद्ध व्यक्ति माना गया है।[3] तामिल साहित्य के अनुसार उसने पाण्डयों और चेरों की संयुक्त शक्ति को पराजित किया। उसके लंका पर आक्रमण के विषय में महावंश तो मौन है लेकिन परवर्ती सिंहली प्रमाणों (Chronicles) में इसका उल्लेख है। प्राप्त सूचना के अनुसार लंका पर अपनी विजय के बाद उसने वहाँ के बारह हजार निवासियों को पूहार (Puhar) नामक बन्दरगाह के निर्माण कार्य में लगाया। वह एक ऐसा शासक था जो प्रजा के सर्वांगीण विकास की ओर समुचित ध्यान देता था। उदाहरण के रूप में उसके द्वारा कावेरी नदी के जल को संचित करके उसके वितरण की उचित व्यवस्था करने का उल्लेख किया जा सकता है। वह निष्पक्ष रूप से न्याय करने वाला शासक था और चाहता था कि उसकी प्रजा सदा सर्वदा उससे संतुष्ट रहे। इस संबंध में अहनानूरु से एक रोचक विवरण मिला है, जिसके अनुसार सामान्य-

१. काम्बोजान् वाटधानांश्च चोलान् पाण्ड्यांश्च सञ्जय।
महाभारत (चित्रशाला प्रेस, पूना), द्रोण, ११, १७। देखिये सभा, २७, २१; ५२, ३५; भीष्म, ९, ६०; ५०, ५१; कर्ण, १२, १५ इत्यादि।

२. सवता विजितसि देवानं पिय (सा) पिय दसि (सा) लाजिने ये च अंता अथा चोडा पं (डि) या···सवता देवानं पि (य) सा पियदसिसा लाजिने दुवे चिकिसका कटा मनुसचिकिसा च पसुचिकिसा च। दूसरा शिलालेख (कालसी)।
पे च पुना लधे देवानं पि-(द) च पवेपु च (अ) तेपु अषषु (पि) योजनपतेषु···चोड-पंडिया···पवता देवानं पि (य) षा धंमानुषथि अनुवतंति। तेरहवाँ शिला लेख (कालसी)। देखिये Basak, R. G: *Aśokan Inscriptions*, pp. 5–6, 67–9.

३. संम्भवत : करिकाल के पूर्ववर्ती चोल कोपेरुनर्किल्ली, वेल पहर्डक्कइ—पेरु विरलकिल्ली, उरुवपहेर इलञ्जेद चेन्नी और परवर्ती चोल चेद चेन्नी नलं किल्ली, किल्ली वलवन, पेरु तिरुवल्वन तथा राजसुयं वेत्त पेरुनर किल्ली थे। Pillai : Tamil India, PP. 102—3. एलल नामक चोल के द्वारा १४५–१०१ ई० पू० में सिंहल पर शासन का उल्लेख भी मिलता है। देखिये Zimmer : *The Art of Indian Asia*, p. 365.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

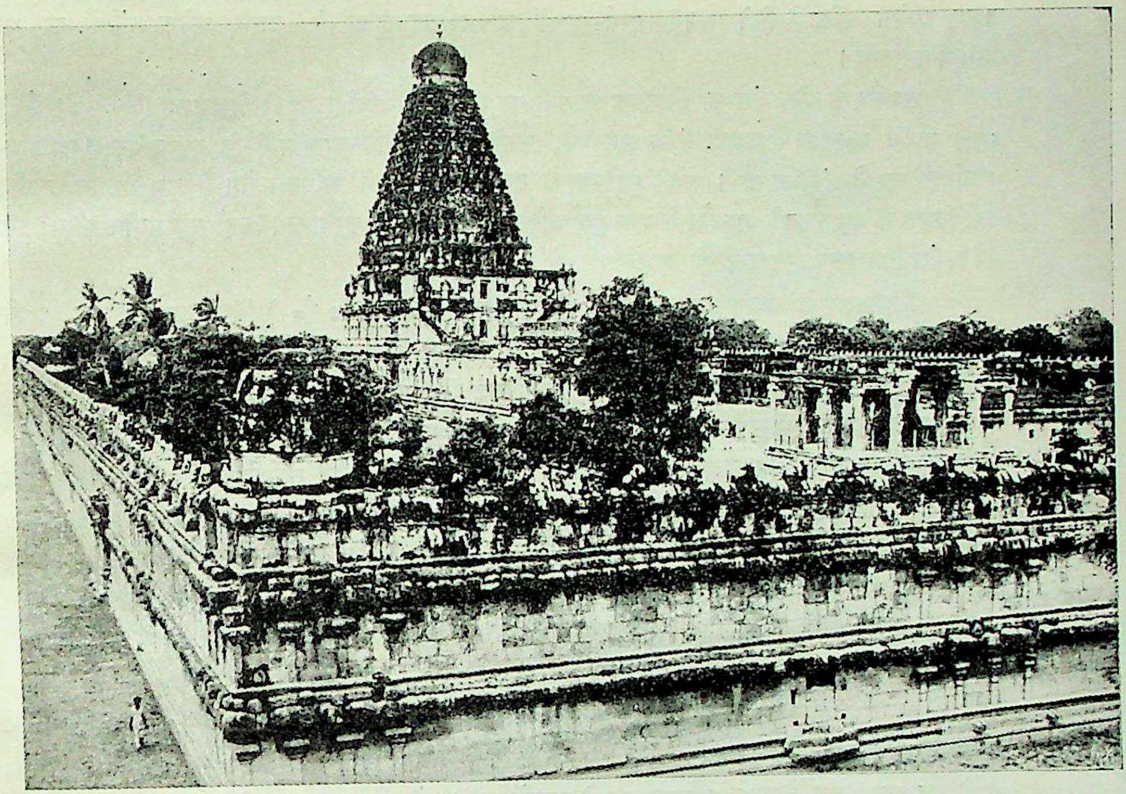

चित्रसंख्या १२. बृहदीश्वर मन्दिर, तञ्जौर

तथा प्रजा की दृष्टि में अवस्था और अनुभव, न्याय करने वाले के लिये महत्त्वपूर्ण योग्यताएँ थीं। युवक करिकाल, जो सम्भवतः पाँच वर्ष की अल्पायु में ही शासक बन गया था,[1] एक बार न्याय करने के लिये बैठा और उसे यह आभास हुआ कि उसकी युवावस्था के कारण उसके निर्णय में जनता को विश्वास नहीं है। वह वहाँ से उठ गया और उसने ऐसे नकली बालों को लगाया, जिससे उसकी अवस्था बड़ी लगे और तब निर्णय किया। प्रजा के इस व्यवहार पर असंतुष्ट न होकर, उनकी प्रसन्नता व उनके संतोष के लिये उसने यह एक अनुकरणीय कार्य किया।[2] साहित्य में भी उसे रुचि थी। कलियलूर रुद्रन् कण्णार को उसने उसकी ३०१ पंक्तियों वाली कविता के लिये १६ लाख स्वर्ण-मुद्राएँ (pons) दी थीं और इस

1. Subrahmanian : *Sangam Polity*, p. 63.
२. वही, पृ. १८३.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार प्रत्येक पंक्ति के लिये ५३३० स्वर्ण-मुद्राओं का औसत हुआ।[1] उसने अनेक मंदिरों का भी निर्माण करवाया।

तञ्जौर के चोल वंश का संस्थापक पल्लवों का सामंत (feudatory) विजयालय (८५०-७१ ई०) था। यद्यपि करिकाल से उसका संबंध अज्ञात है, तथापि यह तथ्य विचारणीय है कि वह करिकाल की राजधानी उरैय्यूर से संबंधित था। उसने मुट्टरैय्यर से तञ्जौर को अपने अधिकार-क्षेत्र में समाविष्ट किया और इस विजय के बाद उसने तञ्जौर में एक दुर्गा मंदिर का निर्माण भी करवाया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि चोल वंश के शासक शैव धर्म को माननेवाले थे।

विजयालय के पश्चात् उसका पुत्र आदित्य प्रथम (८७१-९०७ ई०) सिंहासनारूढ़ हुआ। अपने पल्लव अधिपति (overlord) की ओर से इसने तत्कालीन पाण्ड्य शासक को युद्ध में पराजित किया, लेकिन उसकी यह स्वामी-भक्ति और कर्त्तव्य-परायणता चिरस्थायी नहीं रही और उचित अवसर पाकर उसने पल्लव-शासक अपराजित को भी हराने तथा उसके राज्य पर अधिकार करने में संकोच नहीं किया। ८९३ ई० में उसने तोण्डमण्डलम् को अपने कब्जे में किया। चेर-शासक, स्थाणुरवि, के साथ उसके संबंध मैत्रीपूर्ण थे और उसकी सहायता से उसने पाण्ड्यों से कांगु देश (जिला कोयम्बटूर तथा सलेम) को छीन लिया और पश्चिमी गंगों की राजधानी तलकाड़ तो उसके कब्जे में थी ही। उसने पल्लव-राजकुमारी से विवाह किया जो कालान्तर में उसके पुत्रों— परान्तक और कन्नरदेव, की माँ बनीं। उसे अनेक शैव मंदिरों के निर्माण का श्रेय दिया गया है। यदि यह कहा जाय कि आदित्य प्रथम ही चोल वंश की महत्ता का वास्तविक संस्थापक था, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

आदित्य प्रथम का उत्तराधिकारी उसका पुत्र, परान्तक प्रथम (९०७-५३ ई०) था, जिसके शासन-काल में अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं। अपने मित्र-राज्यों की सहायता से उसने अनेक सैनिक अभियान किये। पश्चिमी गंग, केरल तथा कुडुम्बालूर के प्रधानों पर उसने विजय प्राप्त की। उसकी मदुरा-विजय विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। पराजित पाण्ड्य-शासक, राजसिंह द्वितीय, ने लंका के राजा से सहायता ली, लेकिन ९१५ ई० में दूसरी बार भी विजय न मिल सकी और परान्तक ने उन्हें खदेड़ दिया। उसकी मदुरैकोण्ड मदुरान्तक (मदुरा का अंत करनेवाला), मदुरैय्यम् ईड़मुमकोण्ड अर्थात् मदुरा और लंका को वश में करनेवाला आदि उपाधियाँ उसकी इसी विजय की ओर निश्चित रूप से संकेत करती हैं। पाण्ड्य नरेश ने लंका के नरेश के पास पाण्ड्य राजसत्ता के जिन चिह्नों (insignia of royalty) को रखा था, उन्हें प्राप्त करने में उसे सफलता नहीं मिल सकी। पाण्ड्यों के अतिरिक्त बाण, वैदुम्ब और पल्लवों की अवशिष्ट शक्ति को भी उसने परास्त किया। लगभग ९४९ ई० में कृष्ण तृतीय (राष्ट्रकूट) ने बुडग (पश्चिमी गंग) की सहायता से परान्तक को हरा दिया, जिससे उसकी साम्राज्य-विस्तार की नीति को गहरा धक्का पहुँचा। परान्तक का अंत ९५३ अथवा ९५५ ई० में हुआ।

परान्तक की मृत्यु के परवर्ती और राजराज प्रथम के ९८५ में सिंहासनारूढ़ होने के पूर्ववर्ती काल का चोल-इतिहास अस्पष्ट और अनिश्चित है। परान्तक प्रथम के बाद उसका पुत्र गण्डरादित्य शासक हुआ।

१. वही, पृ. ५६.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शेम्ब्रियन महादेवी नामक उसकी रानी बड़ी धार्मिक और पवित्र थी और उसने अनेक मंदिरों का निर्माण करवाने में रुचि ली। गण्डरादित्य के उत्तराधिकारी क्रमशः अरिञ्जय (९५६-७ ई०), सुन्दर चोल अथवा परान्तक द्वितीय (९५७-७३ ई०) और मदुरान्तक उत्तम चोल (९७३-८५) थे। लगभग तीस-बत्तीस वर्ष का यह समय चोलों के राजनैतिक और पारिवारिक जीवन में अनेक प्रकार की उथल-पुथल का साक्षी है। चोल इतिहास के इस अंधकार युग की समाप्ति उस राजराज प्रथम के राज्यारोहण के साथ हुई, जिसका राज्यकाल चोलों की प्रसिद्धि की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

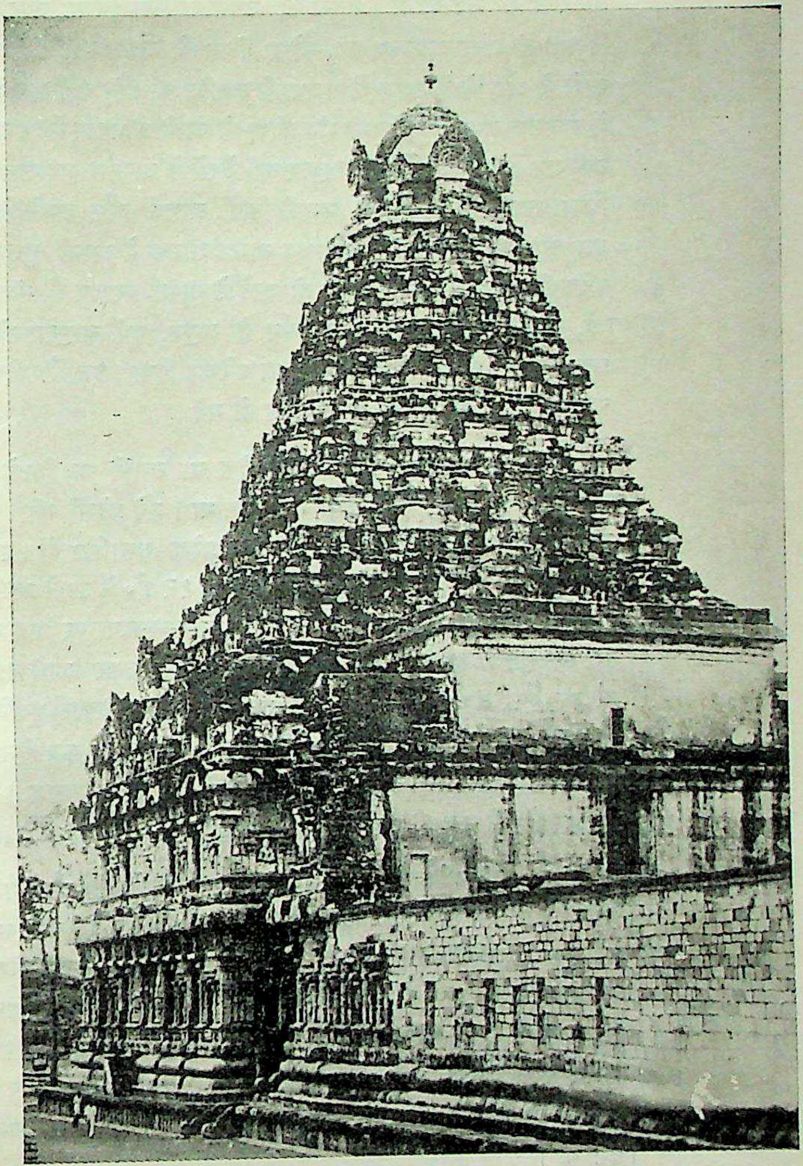

चित्रसंख्या १३. बृहदीश्वर मंदिर, गङ्गैकोण्डचोलपुरम्

राजराज प्रथम ९८५ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। वह एक कुशल शासक ही नहीं, महान् विजेता तथा कला व साहित्य को उदारता के साथ प्रश्रय व प्रोत्साहन देनेवाला भी था। राजकेसरी (राजाओं में सिंह), अरिमौलि (शत्रु का मुकुट) और मोम्माडि चोल (अर्थात् वह, जिसका अधिकार चेर, पाण्ड्य और चोल पर हो), चोल-मार्तण्ड, जयंगोण्ड, पाण्ड्यकुलाशनि (पाण्ड्य कुल के लिये तलवार), केरलान्तक (केरल का अंत करनेवाला) सिंहलान्तक (लंका का अंत करनेवाला), और तैलिंगकुलकाल आदि विभिन्न उपाधियों को धारण करनेवाले, राजराज प्रथम के सफल सैनिक अभियानों की सूचना, उसके शासन-काल के २९ वें वर्ष के तञ्जौर अभिलेख से मिलती है। उसकी सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण सफलता थी त्रिवेन्द्रम् में चेरों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जल-सेना को नष्ट करना। मदुरा को उसने पराजित किया और अमर भुजंगपाण्ड्य को अपने वशीभूत किया। लंका पर आक्रमण कर, महेन्द्र पंचम को अपदस्थ (dislodge) किया और अनुराधपुर को नष्ट करने के बाद पोलोन्नारुव में राजधानी स्थापित की और वहाँ एक शैव मंदिर भी बनवाया। लगभग ६६१ ई० में राजराज प्रथम ने पश्चिमी गंग प्रदेश को अपने अधिकार में किया, जिस पर चोलों का अधिकार १११७ ई० तक रहा। १००७ ई० के चालुक्य-अभिलेखों के अनुसार जब राजराज ने पश्चिमी चालुक्यों पर आक्रमण किया, तब उसके सैनिकों ने उनकी स्त्रियों, ब्राह्मणों और बच्चों के साथ भी दुर्व्यवहार किया। कुछ समय बाद पश्चिमी चालुक्यों के सत्याश्रय नामक शासक ने अपनी पुरानी स्थिति को पुनः प्राप्त किया। पूर्वी और पश्चिमी चालुक्यों के सम्मिलित हो जाने से अपनी पराजय की संभावना को दृष्टिगत करते हुए, उसने अपनी पुत्री, कुण्डवै, का विवाह शक्तिवर्मन् के अनुज, पूर्वी चालुक्य-नरेश, विमलादित्य, से कर दिया और इस प्रकार अपनी राजनैतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया। इस वैवाहिक संबंध के परिणामस्वरूप चोलों तथा पूर्वी चालुक्यों के संबंध मैत्रीपूर्ण तथा घनिष्ठ हो गये।

राजराज प्रथम एक विस्तृत प्रदेश का स्वामी था, जिसके अंतर्गत तुंगभद्रा तक का दक्षिण प्रदेश, मालद्वीप और लंका का एकांश सम्मिलित था। नये प्रदेशों की विजय को वह जितना महत्त्व देता था, उतना ही इस बात को भी कि वे विजित प्रदेश सुशासित हों। उसने स्थानीय स्वशासन (local self government) को प्रोत्साहन दिया। १०१२ ई० में उसने अपने एकमात्र पुत्र, राजेन्द्र प्रथम, को अपने साथ शासन-कार्य में लगाया। राज्य की शासन-व्यवस्था पर इस नये प्रयोग का अच्छा प्रभाव पड़ा। इस व्यवस्था से राज्य के उत्तराधिकारी को, अपने ऊपर आने वाले उत्तरदायित्वों से परिचित होने का अवसर मिल सकता था। अपि च, राज्य का उत्तराधिकारी पूर्वनिश्चित होने के कारण आपसी विवादों और राज्य सिंहासन के लिये प्रतिस्पर्धा का भी अपेक्षाकृत कम होना स्वाभाविक था। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने के योग्य है कि, दो व्यक्तियों (राजा और युवराज) द्वारा संयुक्त शासन होने के कारण दो शासकों की एक ही तिथियाँ (overlapping dates) हैं।

"शिवपादशेखर" की उपाधि धारण करनेवाले शैव राजा, राजराज प्रथम, के राज्यकाल में निर्मित और शिव को समर्पित, विशाल बृहदेश्वर मंदिर भारतीय स्थापत्य कला की गौरवमयी परम्परा के सर्वोत्कृष्ट उदाहरणों में से एक है। अपने समकालीन चालुक्य-नरेश सत्याश्रय को पराजित करने के बाद, वहाँ से लाये हुए खजाने का प्रयोग भी उसने इस मंदिर के लिये किया। स्वयं शैव होने पर भी वह धार्मिक सहिष्णु था, जिसकी पुष्टि तत्कालीन पुरातात्त्विक प्रमाणों से होती है। उसकी इस धार्मिक उदारता की सूचना तञ्जौर के बृहदीश्वर मंदिर की बौद्ध कलाकृतियों, वैष्णव मंदिरों और नेगपटम् में स्थित बौद्ध चूड़ामणि विहार से मिलती है। राजराज ने एक बौद्ध संघाराम के लिये अन्नैमंगलम् नामक गाँव का दान भी किया था।

मुड़िकोण्ड, गंगैकोण्ड, कड़ारंगोण्ड, पण्डित चोल और चोलदेव आदि अनेक उपाधियों से विभूषित राजेन्द्र प्रथम (१०१२–४४ ई०) अथवा परकेसरीवर्मन् महान् पिता का महान् पुत्र था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अपने पिता, राजराज प्रथम, के साथ युवराज के रूप में शासन करने के कारण वह प्रशास-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कीय मामलों से पूर्णतया अवगत हो चुका था। पिता की मृत्यु होने और स्वयं राजा बनने के बाद, १०१८ ई० में उसने अपने पुत्र युवराज, राजाधिराज प्रथम, के साथ संयुक्त रूप से शासन किया।

चोल वंश के तिरुवालंगाडु दान-पत्र अभिलेख, जिसकी तिथि राजेन्द्र प्रथम के राज्यकाल का छठाँ वर्ष है, और उसके राज्य के तेरहवें वर्ष के तिरुमलै शिलालेख से उसकी उपलब्धियों के विषय में सूचना मिलती है। तिरुमलै शिलालेख के अनुसार उसने इडैतुरैनाडु, वनवासी, कोल्लिप्पाक्कै, मण्णैक्कडक्कम्, दक्षिण, माडुणिदेश, धर्मपाल, तक्कणलाड़म् और बंगाल देश को पराजित किया। इनकी प्रत्यभिज्ञा (identification) विवादग्रस्त और अनिश्चित है, लेकिन यह तो असंदिग्ध है कि उसने चोल वंश को गौरव प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। हम ऊपर देख चुके हैं कि परान्तक प्रथम, सिंहल नरेश के पास रक्खे हुए, पाण्ड्य राजसत्ता के प्रतीकों को लेने में असफल रहा था। राजेन्द्र प्रथम ने अपनी सिंहल-विजय के अवसर पर उन्हें तो अपने अधिकार में कर ही लिया, सिंहल के राजा और रानी के मुकुटों को भी अपने कब्जे में कर लेने में वह सफल रहा।

राजेन्द्र प्रथम ने गंगैकोण्डचोलपुरम् को अपनी नयी राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित किया। अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने के लिये उसने इस स्थान पर, एक जलाशय में गंगा का पवित्र जल डलवाया। गंगैकोण्डचोलपुरम् नाम भी इसी घटना से संबंधित है। उसकी एक उपाधि, गंगैकोण्ड, का अर्थ है वह राजा, जो गंगा को लाया। अपनी नई राजधानी में उसने एक विशाल शैव मंदिर, बृहदीश्वर, का निर्माण करवाया। इस मंदिर का वर्णन हम आगे चल कर करेंगे।

ऐसा लगता है जैसे राजेन्द्र प्रथम का इरादा एक ऐसे मंदिर का निर्माण करवाने का था, जो उसके पिता के द्वारा बनवाये गये मंदिर से भी बढ़कर निकलता।

राजेन्द्र के तीन पुत्र थे—राजाधिराज (१०१८–५४ ई०), राजेन्द्र द्वितीय (१०५२–६४ ई०) और वीर राजेन्द्र (१०६३–७० ई०)। इनमें से युवराज राजाधिराज १०१८ ई० से ही अपने पिता के साथ संयुक्त रूप से शासन कर रहा था और १०४४ ई० में राजेन्द्र प्रथम की मृत्यु के बाद वह स्वतंत्र राजा हुआ। उसी वर्ष उसने अश्वमेध यज्ञ किया। उसके राज्यकाल में सिंहल के साथ संघर्ष निरन्तर चलता रहा। चालुक्यों के साथ जो लड़ाई चल रही थी, वह १०५२ ई० में समाप्त हुई। इस लड़ाई का अंत चालुक्यनरेश सोमेश्वर की पराजय और चोल-नरेश की मृत्यु में हुआ। राजाधिराज के बाद हम उसके पुत्र नहीं, अपितु छोटे भाई, राजेन्द्र द्वितीय, को सिंहासनारूढ़ पाते हैं। राजेन्द्र द्वितीय का ज्येष्ठ पुत्र राजमहेन्द्र १०५९ में युवराज बना था। राजेन्द्र द्वितीय और युवराज राजमहेन्द्र की मृत्यु के बाद १०६३ ई० में राजेन्द्र द्वितीय का छोटा भाई वीर राजेन्द्र गद्दी पर बैठा। उसकी विभिन्न उपाधियाँ थीं आहवमल्ल-कुलकाल और वल्लभ-वल्लभ।

चालुक्य-नरेश सोमेश्वर ने पिता-पुत्र की मृत्यु की घटनाओं का लाभ उठाने की दृष्टि से १०६७ ई० में चोलों को ललकारा लेकिन इसके बाद भी वह युद्ध करने के लिए सामने नहीं आया। विजयी चोल तुंगभद्रा के तट पर अपना विजय-स्तंभ स्थापित करने और सोमेश्वर का अपमान करने के बाद वापस लौटे। सोमेश्वर, जो उस समय अस्वस्थ था, इस अपमान से लज्जित हुआ और उसने तुंगभद्रा नदी में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कूद कर आत्महत्या कर ली। कालांतर में सोमेश्वर के पुत्र सोमेश्वर द्वितीय के साथ भी उसका संघर्ष हुआ। वीर राजेन्द्र ने वेंगी की ओर प्रस्थान किया तथा पश्चिमी चालुक्यों को परास्त किया। सिंहल में होने वाले विद्रोह (rebellion) को भी उसने दबाया। वीर राजेन्द्र प्रजा की सुख सुविधा का ध्यान रखनेवाला था। उसने एक चिकित्सालय और छात्रावास सहित एक वैदिक विद्यालय भी बनवाया था। १०६६ ई० में वीर राजेन्द्र की मृत्यु हुई।

वीर राजेन्द्र के साथ उसका पुत्र अधिराजेन्द्र १०६८ से युवराज के रूप में पिता के साथ संयुक्त रूप से शासन कर रहा था। १०६६ में वीर राजेन्द्र की मृत्यु के बाद वह स्वतंत्र शासक बना लेकिन कुछ महीनों के अल्प समय में ही उसका स्वर्गवास हो गया। अधिराजेन्द्र अपनी प्रजा को संतुष्ट करने में असमर्थ रहा। प्रजा की इस अप्रसन्नता के एक प्रमुख कारण के रूप में उसकी असहिष्णु धार्मिक नीति का उल्लेख किया जा सकता है। ऐसी संभावना भी निराधार नहीं प्रतीत होती कि उसके विरोध में होने वाले षड्यन्त्र में कुलोत्तुङ्ग प्रथम (१०७०–११२२ ई०) का भी हाथ रहा हो, यद्यपि इसकी पुष्टि के लिए कोई ठोस आधार भी नहीं है। उसके साथ ही विजयालय वंश-परम्परा का भी अंत हो गया।

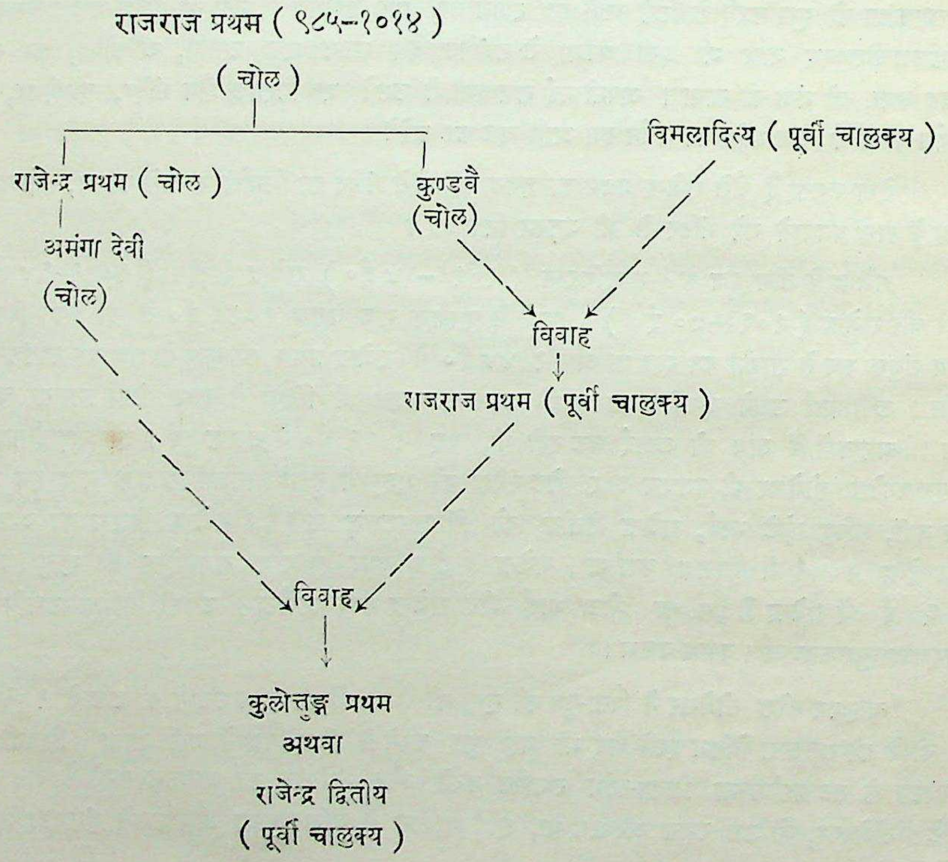

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपर्युक्त तालिका से चोल व चालुक्यों के वैवाहिक-सम्बन्ध स्पष्ट हो जाएंगे। राजराज प्रथम (चोल) की पुत्री कुण्डवै का विवाह पूर्वी चालुक्य नरेश विमलादित्य से हुआ था जो राजराज प्रथम (पूर्वी चालुक्य) के क्रमशः माता पिता थे। इस राजराज प्रथम का विवाह राजेन्द्र प्रथम (चोल) की पुत्री अमङ्गा देवी से हुआ, जिनका पुत्र कुलोत्तुङ्ग था। इस प्रकार कुलोत्तुङ्ग चोलों से रक्त का संबंध था; क्योंकि उसके पिता व माता, दोनों चोल वंश से संबंधित थे। इसी कारण उसे चालुक्य-चोल बताया गया है।

चोल इतिहास में हुई इस अव्यवस्था और उथल-पुथल का लाभ उठाने की दृष्टि से सिंहली नरेश, विजयबाहु (१०५५-१११०) ने पोलोनरुव (Polonnaruva) को १०७० में अपने वश में किया और १०७३ ई० में राजा बना। कुलोत्तुंग ने उसके साथ वैवाहिक सम्बंध स्थापित किया। १०८० में उसकी लड़की का विवाह एक सिंहली राजकुमार के साथ हुआ। १०७६ ई० में कुलोत्तुंग का संघर्ष विक्रमादित्य (चालुक्य) से हुआ जिसके विषय में चोल और चालुक्य प्रमाणों द्वारा दी गयी सूचना परस्पर विरोधी है। लेकिन यह प्रायः निश्चित है कि विजयादित्य सप्तम की मृत्यु के बाद कुलोत्तुंग ने अपने पुत्र को १०७६ ई० में वेंगी का वायसराय बना दिया। अवसर पाकर जिन पाण्ड्यों और चेरों ने मुक्त होने की चेष्टा की थी, उन्हें दबाने और अपने वश में करने में भी उसे सफलता मिली।

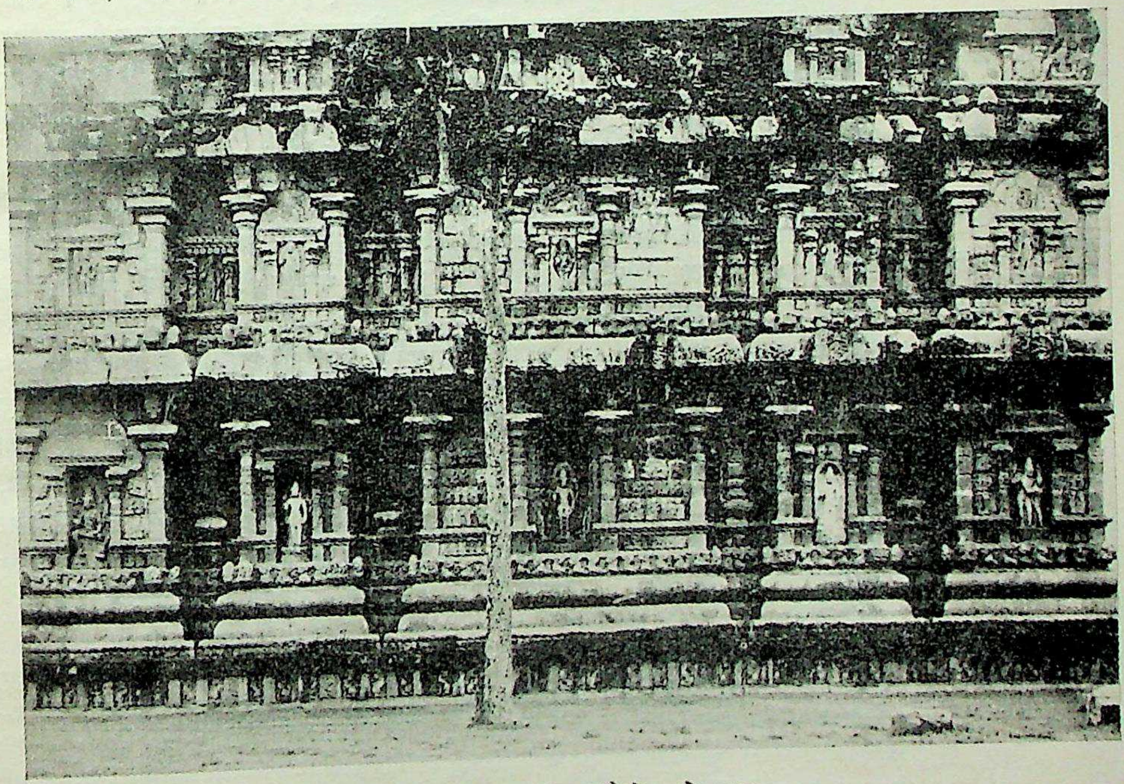

चित्रसंख्या १४. बृहदीश्वर मंदिर, गंगैकोण्डचोलपुरम्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कलिंग पर उसने दो बार १०९६ और १११० में चढ़ाई की। इनमें १११० वाले आक्रमण का वर्णन कुलोत्तुंग के दरबारी कवि जयगोण्डार की कलिंगत्तुपरार्ण में मिलता है। इसमें उसकी ओर से करुणाकार तोण्डेमान ने नेतृत्व किया। ११११ ई० के एक अभिलेख से सूचना मिलती है कि कन्नौज के गहड़वालों के साथ उसके संबंध मैत्रीपूर्ण थे। चालुक्य-नरेश विक्रमादित्य षष्ठ के साथ उसके संबंध हमेशा से ही शत्रुतापूर्ण थे। लगभग १११८ में विक्रमादित्य ने उसे पराजित कर वेंगी पर अधिकार कर लिया, और यह उसकी सबसे बड़ी विजय थी।

कुलोत्तुंग की विभिन्न उपाधियाँ थीं विरुदराजभयंकर (विरुदराज अथवा विक्रमादित्य को भयभीत करनेवाला), त्रिभुवनचक्रवर्ती (तीनों लोकों का स्वामी) थुंगन्तविर्त (चुंगी अर्थात् tolls को समाप्त करनेवाला)। कुलोत्तुंग भी चोलवंश का एक महान् शासक था और जैसा कि नीलकण्ठ शास्त्री ने कहा है "उसकी अद्वितीय सफलता और समृद्धि की दृष्टि से उसका लम्बा शासनकाल विशेष महत्व का है।[1] कुलोत्तुंग की पत्नियों में मदुरान्तकी और त्यागवल्ली के नामों की, सात पुत्रों तथा एक पुत्री की सूचना मिलती है।

कुलोत्तुंग प्रथम का उत्तराधिकारी उसका पुत्र विक्रमचोल (१११८–११३५ ई०) था। उसकी त्यागसमुद्र और अकलंक उपाधियाँ, उसके नैतिक गुणों की ओर संकेत करती हैं। उसने ११२८ ई० में चिदम्बरम् में स्थित नटराज मंदिर के लिए दान दिया। तिरुवाडुतुरै में चिकित्सा विज्ञान विद्यालय बनवाया था, जहाँ चरकसंहिता और वागभट की अष्टांगहृदयसंहिता की शिक्षा दी जाती थी। उसकी राजनैतिक उपलब्धियों के अंतर्गत कोलार व गंगवाड़ि के कुछ अन्य प्रान्तों और पुनः वेंगी पर चोलों का अधिकार होना है।

विक्रमचोल के बाद उसका पुत्र कुलोत्तुंग द्वितीय (११३३–५० ई०) में राजा हुआ। उसने ११३३ से ११३५ तक अपने पिता के साथ संयुक्तरूप से शासन किया और पिता की मृत्यु के बाद स्वतंत्र शासक बना। उसने भी चिदम्बरम् मंदिर के लिए दान दिया। उसमें धार्मिक सहिष्णुता का अभाव था। कुलोत्तुंग द्वितीय का उत्तराधिकारी उसका पुत्र राजराज द्वितीय (११४६–७३ ई०) था जिसके राज्यकाल में, १०६९ ई० में पाण्ड्यों के गृह-युद्ध (civil war) का प्रारंभ हुआ, जो कई वर्षों तक चलता रहा। कुलशेखर पाण्ड्य और पराक्रम पाण्ड्य में लड़ाई की शुरुआत हुई। पराक्रम पाण्ड्य ने लंका से मदद माँगी, लेकिन वहाँ से सहायता पहुँचने के पहले ही कुलशेखर पाण्ड्य, पराक्रम पाण्ड्य को मार कर राजा बन बैठा। सिंहल के सेनापति, पराक्रमबाहु ने पाण्ड्यों के देश में विनाश-कार्य किया। इतना ही नहीं, कुलशेखर पाण्ड्य को सिंहासनच्युत कर पराक्रम पाण्ड्य के पुत्र को गद्दी पर बैठा दिया। तब कुलशेखर पाण्ड्य ने चोलों की मदद माँगी और इस सहायता के परिणामस्वरूप वह पुनः राजा बन गया। तत्पश्चात्

1. "Kulottunga must take rank among the great Chola (SIC) monarchs. His long reign was, for the best part, characterized by unparalleled success and prosperity... The wisdom of Kulottunga's statesmanship lay in adjusting his aims to his resources and in preferring the well being of his subjects to the satisfaction of his personal vanity." Sastri : *A History of South India, p.* 193.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चोलों ने लंका पर आक्रमण किया। लेकिन इस अवसर पर कुलशेखर ने, जो कि चोलों की मदद से राजा बना था, चोलों के साथ अपनी नीति बदल ली और उसने सिंहलनरेश के साथ मित्रता कर ली। राजराज द्वितीय का राज्यकाल अनेक राजनैतिक गड़बड़ियों वाला रहा और चोल शक्ति सामन्तों को अपने वश में रखने में क्रमशः असमर्थ होती जा रही थी।

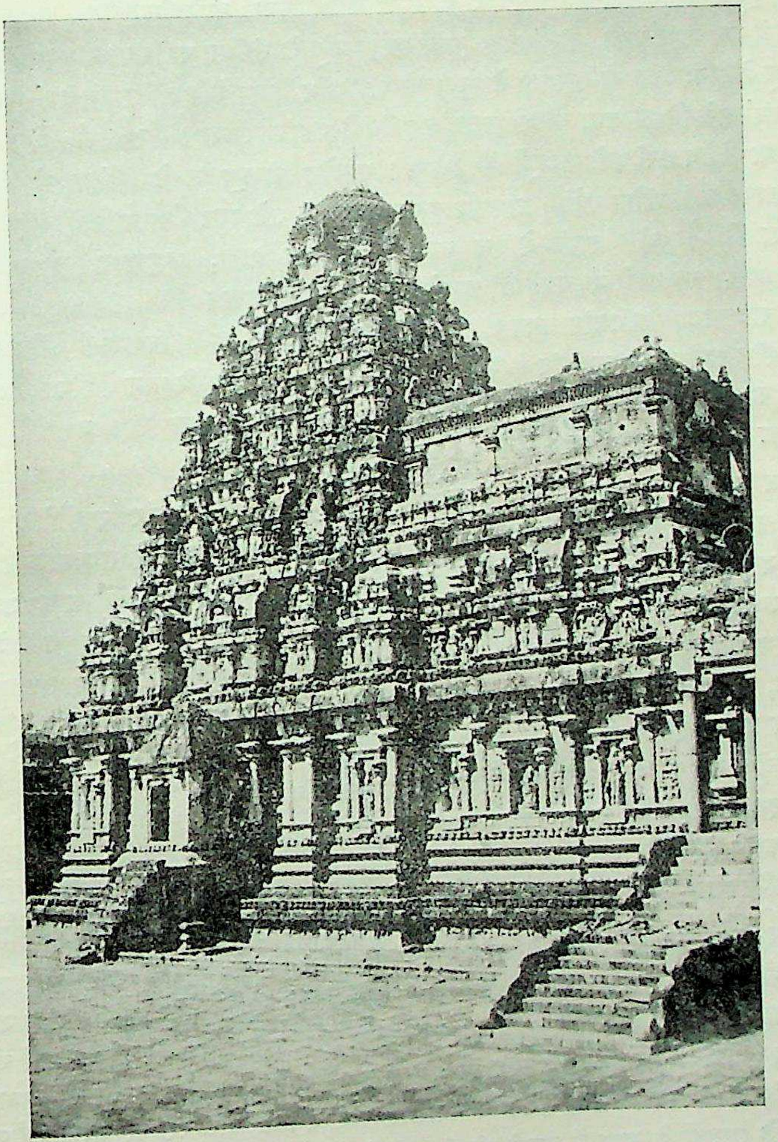

चित्रसंख्या १५. ऐरावतेश्वर मंदिर, दारासुरम्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाण्ड्यों का गृहयुद्ध, जो राजराज द्वितीय के राज्यकाल में प्रारंभ हुआ था, उसके उत्तराधिकारी, राजाधिराज द्वितीय (११६३-७९ ई०) के समय में भी चलता रहा। राजाधिराज की सहायता से वीर पाण्ड्य राजा बन सका था। राजाधिराज द्वितीय का उत्तराधिकारी कुलोत्तुंग तृतीय था, जिसकी उपाधि मदुरैय्युम पाण्डियन्मुडित्तलैय्यम् (अर्थात् मदुरा व पाण्ड्य को पराजित करनेवाला) थी। उसके राज्यकाल में वीर पाण्ड्य ने लंका-नरेश की सहायता से चोलों का विरोध किया। कुलोत्तुंग तृतीय (११७८-१२१६ ई०) ने ११८२ में वीर पाण्ड्य को, जो संभवतः कुलशेखर पाण्ड्य से संबंधित था, राजा बनाया। ११८९ ई० में वीर पाण्ड्य ने पुनः केरल की सहायता से कुलोत्तुंग का विरोध किया लेकिन फिर पराजित हुआ। पाण्ड्यों की मदद करनेवाले सिंहली राजा को भी कुलोत्तुंग तृतीय ने पराजित किया। १२०५ ई० में उसने जटावर्मन् कुलशेखर का विरोध करनेवाले पाण्ड्यों को हराया। पराजित पाण्ड्य उससे असंतुष्ट रहे और कुलोत्तुंग तृतीय के राज्यकाल के अंतिम वर्षों में मारवर्मन सुन्दर पाण्ड्य ने उसे बहुत परेशान किया। इस बार होयसल ने मध्यस्थता की और चोल हारने से बच गये। तेलुगु चोल, बाण, शम्बुवराय, काड़व, मलैय्यमान अदिगमान आदि सामंतों ने भी चोलों की कमजोरियों का लाभ उठाया।

अपने राज्यकाल के अधिकांश समय में पाण्ड्यों के साथ संघर्षरत रहने और अपनी शक्ति को बचाने के लिए प्रयत्नशील रहने पर भी कुलोत्तुंग ने मन्दिरों के निर्माण में रुचि ली। त्रिभुवन में स्थित मन्दिर उसकी कलाप्रियता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। यह चोलों का अंतिम महान् शासक कहा गया है। और यहाँ से चोल वंश का अपकर्ष प्रारम्भ होता है।

राजराज तृतीय (१२१६-१२४६ ई०) को, राज्यारोहण के साथ ही, गंभीर राजनैतिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, क्योंकि जैसा हम ऊपर कह चुके हैं उसके पूर्वाधिकारी के राज्यकाल में ही चोलों के सामंतों की शक्तियाँ क्रमशः सुदृढ़ हो रही थीं। राजराज तृतीय ने पाण्ड्यों के साथ सन्धि का उल्लंघन करके उनके साथ लड़ाई की। इससे उसकी मुसीबतों में और वृद्धि हुई। इस युद्ध में वह पराजित हुआ विजेता पाण्ड्यों ने उसकी राजधानी पर अधिकार कर लिया। पाण्ड्यों और चोलों के इस युद्ध का वर्णन कालकलभविरचित, गद्यकर्णामृत, में मिलता है, जिसके अनुसार युद्ध से पलायित राजराज तृतीय को कोप पेरुंजिंग (काडवराय) ने बन्दी बना लिया। इस समय चोलों की मदद होयसल वंश के तत्कालीन नरेश ने की। नरसिंह द्वितीय ने, जिसकी माँ चोल वंश की थी, अपने सेनापतियों को काडवराय कोप पेरुंजिंग का विरोध करने के उद्देश्य से भेजा और इन सेनानायकों ने राजराज को बन्धनमुक्त किया। नरसिंह ने चोलों की यह जो महत्त्वपूर्ण सहायता की उसी के कारण वह चोलराज्यप्रतिष्ठापनाचार्य के रूप में विख्यात हुआ और चोल राजा होयसलों पर आधारित। इन परिस्थितियों में यह स्वभाविक है कि सामन्त केन्द्रीय आधिपत्य के नियंत्रण में न रह जाते।

राजराज तृतीय का उत्तराधिकारी राजेन्द्र तृतीय (१२४६-७९ ई०) था जिसने चोल वंश की खोती हुई प्रतिष्ठा को बचाने के लिए यथासम्भव प्रयत्न किया लेकिन इससे स्थिति में कुछ विशेष अंतर न पड़ सका। दूसरी ओर पाण्ड्यों की शक्ति निरंतर बढ़ती जा रही थी। अंततोगत्वा लगभग १२५८ ई० में चोल पाण्ड्यों के आधीनस्थ हो गये। इस प्रकार लगभग ४०० वर्षों तक शासन करनेवाले वंश का पतन हुआ। कितना विलक्षण संयोग है कि राजराज तथा राजेन्द्र नामधारी राजाओं ने जिस चोल वंश को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया उन्हीं नामवाले शासकों के राज्य में उतनी ही तीव्र गति से उसका अधःपतन भी हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कला

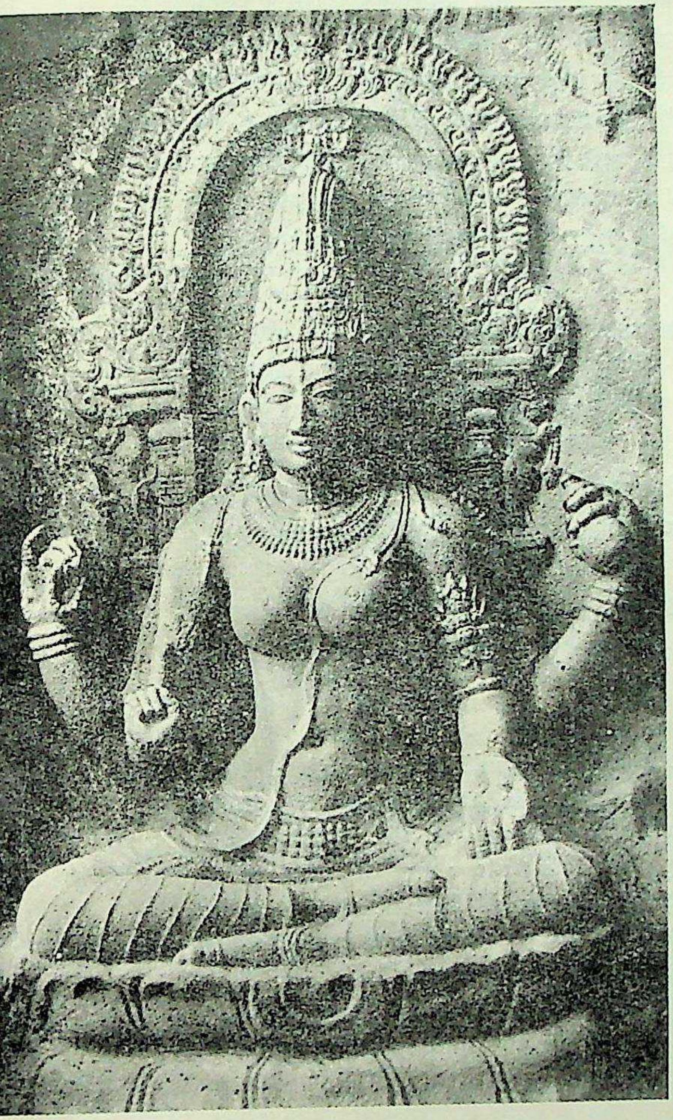

चित्रसंख्या १६. सरस्वती, गंगैकोण्डचोलपुरम्

चोलों के राजनैतिक इतिहास के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जायगा कि चोलों ने लगभग चार शताब्दियों तक दक्षिण भारत पर शासन किया। इस वंश के कुछ शासक सफल विजेता तो थे ही, कला व संस्कृति में भी रुचि रखते थे। शैव धर्म को मानने के परिणामस्वरूप चोलों के शासन-काल में बने हुए अधिकांश अवशेष शैव धर्म से संबंधित हैं। धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाने के कारण उन्होंने अपने व्यक्तिगत धार्मिक विश्वास को प्रजा के ऊपर नहीं लादा और अन्य धर्मों के लिये भी दान दिये। चोलों की महान् कला-परम्परा का परिचय देनेवाले प्रमुख उदाहरण हैं उनके मन्दिर और उनकी मूर्तिकला व चित्रकला, जिसका विवरण अब प्रस्तुत है।

मन्दिर

हिन्दू मन्दिर की कल्पना और उसके विभिन्न अंगों के विषय में हम पहले ही देख चुके हैं। चोलों द्वारा बनवाये गये प्रमुख मंदिर[1] निम्नांकित हैं:—

निशुम्भसूदनी दुर्गा के एक मंदिर के अतिरिक्त नर्त्तमलाइ में स्थित विजयालय चोलेश्वर मंदिर का निर्माण संभवतः विजयालय ने करवाया था। इस पश्चिमाभिमुख मंदिर में चौकोर प्राकार के बीच में गोलाकार गर्भगृह इसकी असामान्य विशेषता है। सामने की ओर स्तंभयुक्त मण्डप है। इन स्तंभों के आधार (base) और शीर्ष-भाग (top) चौकोर हैं और मध्य का भाग अष्टाश्र है। विमान में चार मंजिलें हैं, जिनमें नीचेवाली तीन मंजिलें चौकोर हैं और ऊपर वाली गोल है। सबसे नीचेवाली मंजिल सबसे ज्यादा चौड़ी है और ऊपरवाली मंजिलों की चौड़ाई क्रमशः कम होती गयी है। इनके ऊपर

१. विशेष विवरण के लिए देखिये Sastri : *The Colas*, pp 614 ff.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अण्डाकार शिखर है और सबसे ऊपर है कलश। मंदिर के अलंकृत प्रवेशद्वार के दोनों ओर पाँच फीट ऊँचे दो आले (niches) हैं, जिनमें द्वारपाल की आकृतियाँ बनी हुई हैं। ये द्वारपाल पल्लव-द्वारपालों के समान हैं। पल्लव द्वारपालों की भाँति ये द्वारपाल दो हाथ वाले हैं जबकि तंजौर और गंगैकोण्डचोलपुरम् के परवर्ती उदाहरणों में उन्हें चार हाथ वाला बनाया गया है।[1] मंदिर का बाह्य अलंकरण चोल विशेषताओं से युक्त है, यथा छज्जे (cornice) में कुडु की आकृति (देखिए चित्र ३ व ४) बनी हुई है। इस प्रमुख भवन के चारो ओर छोटे-छोटे सात अन्य मंदिर भी बने हैं जिनका सामना मुख्य मंदिर की ओर है। इस प्रकार, मुख्य मंदिर के साथ छोटे-छोटे मंदिरों का अस्तित्व भी प्रारंभिक चोल स्थापत्य कला की एक विशेषता है। यह विशेषता आदित्य प्रथम के राज्यकाल में बनवाये गये, पुडुक्कोट्टइ में स्थित बाला सुब्रह्मण्यम् मंदिर में भी है।[2] आदित्य प्रथम को कावेरी के दोनों तटों पर और समुद्र तट से सह्याद्रि तक अनेक शैव मंदिरों के निर्माण का श्रेय दिया गया है।

मूर्तिकला की दृष्टि से कुम्भकोणम् में स्थित नागेश्वर मंदिर उल्लेखनीय है। अलंकरण के लिए बाहर की ओर ताखों की आकृतियाँ बनी हुई हैं। गर्भगृह की पश्चिमी दीवार पर अर्धनारीश्वर, उत्तरी ओर ब्रह्मा और दक्षिणी ओर दक्षिणामूर्ति को बनाया गया है। कुछ आलों में स्त्रियों और पुरुषों की आदमकद मूर्तियाँ हैं। ये आकृतियाँ संभवतः दान देनेवालों की हैं।[4] यहाँ पर पौराणिक दृश्य भी अंकित है।

त्रिचिनॉपॉली के श्रीनिवासनल्लूर जिले में स्थित कोरंगनाथ[5] मंदिर का निर्माण परान्तक प्रथम ने करवाया था। इस मंदिर के विभिन्न भाग हैं गर्भगृह, मण्डप और अन्तराल। चौकोर गर्भगृह २५'×२५', मण्डप २५'×२०' और अंतराल १२'×१२' है। मंदिर की ऊँचाई ५० फीट है।

गर्भगृह की बाहरी दीवाल पर दक्षिण में काली (दक्षिणामूर्ति) अंकित है जिनकी बाँयी ओर सरस्वती और दाहिनी ओर लक्ष्मी हैं। नीचे की ओर असुर की आकृति है। पश्चिमी और उत्तरी दीवालों पर क्रमशः विष्णु और ब्रह्मा को खड़े हुए अंकित किया गया है।[6]

1. "The earlier pallava *dvāra-pālas* (door-keepers), with a very natural look and mostly with a single pair of arms, are replaced in the Chola (sic) structures by those with a fierce mien and four arms, the ones in the Tañjāvūr and Gangaikondacholapuram temples being typical examples : they carry the *triśūla* (trident) on their crowns, bear tusks protruding from their mouths and strike terror with their knit eye-brows, rolling eyes and hands always in the *tarjani* (threatening) and *vismaya* (wonder) attitudes." Sivaramamurti : *The Chola Temples*, p. 10.
2. Sastri , K. A. N : *A History of South India*, *p*. 464.
३. वही, पृ. १७५.
४. वही, पृ. ४६४.
५. तामिल में कुरंगु का अर्थ है बंदर और इस मंदिर को कोरंगनाथ नाम इसलिए दिया गया क्योंकि इसे एक बंदर दूषित कर दिया था। देखिए Brown : *Indian Architecture*, *p*. 84.
६. देखिए वही, फलक संख्या ६६, चित्र संख्या १.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूवर्कोइल का तात्पर्य तीन मंदिरों के उस समूह से है जो कोडम्बलूर (पोडुकोट्टई) में, परान्तक द्वितीय के एक सामंत, भूति विक्रमकेसरी के द्वारा बनवाया गया था। दस-दस फीट की दूरी पर स्थित ये तीनों पश्चिमाभिमुख चौकोर मंदिर २१'×२१' हैं। इनमें से उत्तरी मंदिर के कुछ ही अंश वर्तमान हैं और शेष दोनों अपेक्षाकृत अच्छी अवस्था में हैं।[1]

मद्रास से २०० मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित तंजौर नामक स्थान में, चोल वंश के प्रतापी शासक राजराज ने लगभग १००० ई० में एक भव्य मंदिर का निर्माण करवाया था, जो बृहदीश्वर अथवा राज-राजेश्वर मंदिर के नाम से विख्यात है। अपने विशाल आकार तथा मूर्तिकला और चित्रकला के उत्कृष्ट उदाहरणों से युक्त होने के कारण भारतीय स्थापत्य कला में इस मंदिर का स्थान अद्वितीय है।[2]

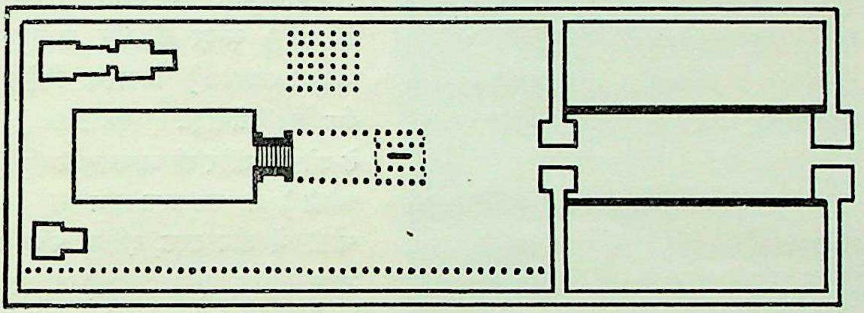

चित्रसंख्या १७. बृहदीश्वर मंदिर, तञ्जौर, का नक्शा (sketch plan)

शिव को समर्पित यह मंदिर दीवार से घिरे हुए एक प्रांगण में स्थित है, जो ५०० फीट लम्बा और २५० फीट चौड़ा है। इसके आगे एक और प्रांगण है, जो २५० फीट लम्बा और २५० फीट चौड़ा है। मंदिर में गोपुर भी दो हैं। बाहर वाला चौकोर प्रांगण स्थापत्य कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है। संभवतः इस भाग में छोटे-छोटे मंदिर या निवास आदि बनवाने की मौलिक योजना रही होगी। दूसरे वाले प्रांगण में मंदिर स्थित है। गर्भगृह के अतिरिक्त मंदिर के विभिन्न भाग हैं एक बड़ा मण्डप, एक स्तंभाधारित मण्डप, और नन्दी मण्डप, जो एक सीध में (axially) बनाये गये हैं।

इस मंदिर में आकर्षण का केन्द्र इसका १९० फीट ऊँचा[3] विमान है, जिसके तीन भाग हैं, आधार, ढलुवाँ भाग और अण्डाकार स्तूपिका। आधार (vertical base) ८२ फीट का वर्गाकार है। इसकी

१. शास्त्री, पूर्वोल्लिखित कृति, पृ. ४५६.

2. "Apparently the largest, highest and most ambitious production of its kind hitherto undertaken by Indian builders, it is a landmark in the evolution of building art in Southern India". Brown, *Op. cit*, p. 85.

३. वही, पृ. ८५। कहीं कहीं इसकी ऊँचाई २०० फीट बताई गई है। देखिये C. Sivaramamurti : *The Chola Temples*, p. 15.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

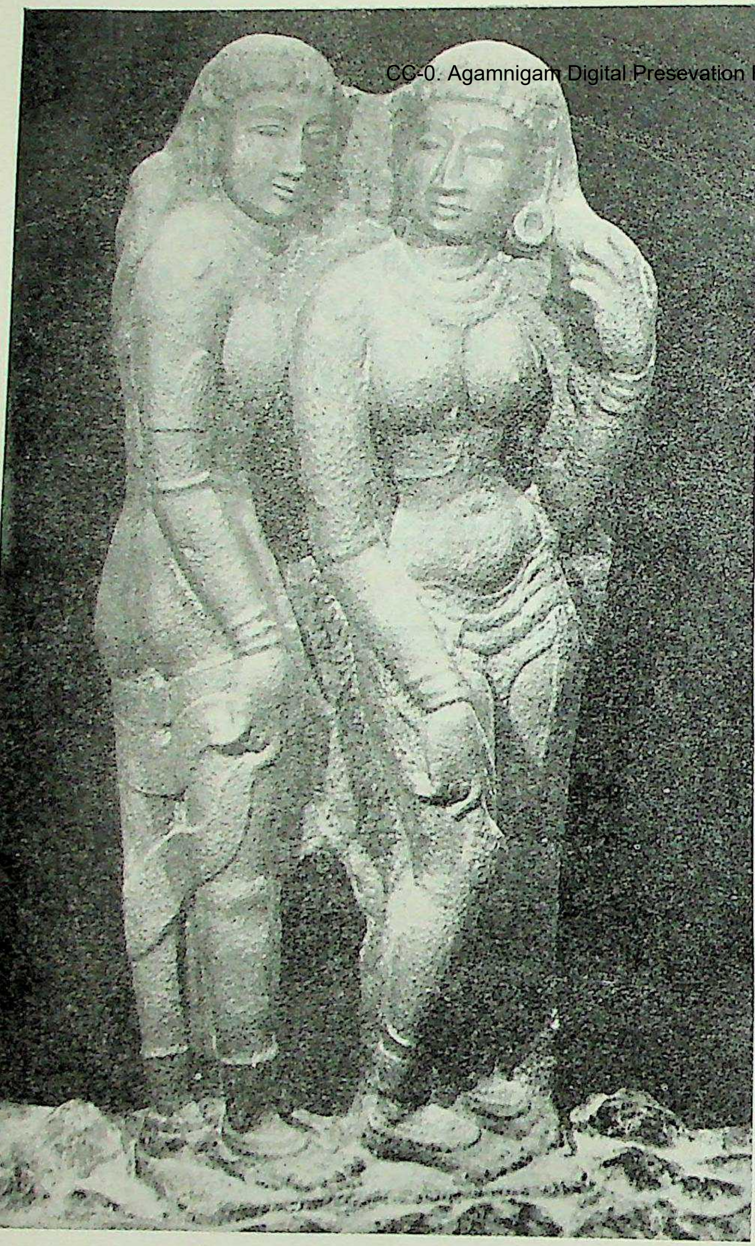

चित्रसंख्या १८. ऋषि-पत्नी, गंगैकोण्डचोलपुरम्

ऊँचाई ५० फीट है और यह एक चौड़ी गढ़त (moulding) के द्वारा दो भागों में बाँट दिया गया है। शिखर के ढलुएँ हिस्से (Pyramidal body) में तेरह धारियाँ (zones) हैं, जिनमें नीचे वाली सबसे अधिक चौड़ी है और यह चौड़ाई क्रमशः कम होती गई है। सबसे ऊपर वाली धारी की चौड़ाई नीचे वाली की एक तिहाई है।

अण्डाकार स्तूपिका (domical finial) अन्दर की ओर झुकाव (inward curve) के कारण विशेष आकर्षक है।[1] ग्रेनाइट (granite) पत्थर से बने इस मंदिर की आधारभूमि (plinth, चौकी) में सब तरफ अभिलेख लिखे हैं। चौकी में तीन तरफ, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में आलों (niches) की दो पक्तियाँ हैं और इनमें विभिन्न देवी-देवता, जैसे शिव, विष्णु, लक्ष्मी, दुर्गा, हरिहर, अर्धनारीश्वर, कालान्तक, श्रीदेवी, भूदेवी, विष्णुअनुग्रह मूर्ति, वीरभद्र, गंगाधर, सरस्वती, और महिषासुर-मर्दिनी, आदि अंकित हैं। मंदिर की भीतरी दीवाल पर शिव को नृत्य की विभिन्न एक सौ आठ मुद्राओं में बनाया गया है। स्वयं राजराज और उसकी पत्नी, लोक महादेवी, की मूर्तियाँ भी यहाँ पर स्थापित की गई थीं। ऐसा उस अभिलेख से ज्ञात होता है जिसमें राजा और रानी की मूर्तियों की लम्बाई इत्यादि का वर्णन है। राजराज के पिता परांतक द्वितीय की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी सती हुई। राजराज की बहन कुण्डवै ने अपने दिवंगत माता पिता के प्रति श्रद्धा के

1. "....The pyramidal body mounts up in thirteen diminishing zones, until the width of its apex equals one-third of its base. On the square platform thus formed stands the cupola, the inward curve of its neck producing a pleasing break in the otherwise rigid outlines of the composition while the bulbous dome poised like a light but substantial globe is a fitting finish to its soaring character." Brown, *op. cit.*, p. 85.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारण उनकी मूर्तियाँ भी वहाँ पर स्थापित करवाईं और दोनों की पूजा के लिये उचित व्यवस्था भी की।[1]

गर्भगृह के चारों ओर का नौ फुट चौड़ा रास्ता (passage) अंधकारयुक्त है लेकिन यहाँ भी मूर्तिकला और चित्रकला के उत्कृष्ट उदाहरण बनाये गये हैं। गर्भगृह की दक्षिणी, पश्चिमी और उत्तरी दीवारों पर शिव की बहुत विशाल (colossal) मूर्तियाँ हैं। इनमें से एक में शिव भाला लिये हुए, दूसरी में वे तलवार और त्रिशूल के साथ बैठे हुए और तीसरी में दस हाथ वाले शिव नृत्य करते हुए हैं। विष्णु को एक वाद्य बजाते हुए और देवी को पद्मासन पर बैठे हुए बनाया गया है।

इस प्रकार यह मंदिर चोल शासकों की कला के प्रति रुचि तो बताता ही है, उनके वैभव और उनकी शक्ति का भी आभास कराता है। यदि चोलों ने कोई और उदाहरण न भी छोड़ा होता, तो बृहदीश्वर मंदिर अकेले ही यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त था कि चोल-नरेश कला को समुचित प्रश्रय तथा प्रोत्साहन देते थे।

चोल नरेश राजराज के पश्चात् उसका पुत्र राजेन्द्र प्रथम गद्दी पर बैठा। अपने पिता के समान यह भी एक कुशल और सफल शासक था। गंगा नदी तक अपनी सफल विजय-यात्रा के साथ उसने गंगैकोण्ड-चोलपुरम् को अपनी राजधानी बनाया और वहाँ पर जिस बृहदीश्वर गंगैकोण्डचोलेश्वर मंदिर का निर्माण कराया, वह उसके गौरव-युक्त शासन-काल का साक्षी है। इस मंदिर

चित्रसंख्या १९. विष्णु, गंगैकोण्डचोलपुरम्

1. Aravamuthan : *Portrait Sculpture in South India*, p. 34.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को छोड़कर राजेन्द्र प्रथम की राजधानी के कोई भी अवशेष पहचानी जाने लायक अवस्था में नहीं हैं। राजा का महल मंदिर से एक मील दूर उल्कोट्टई (Ulkottai) नामक स्थान में, मलबे (debris) के रूप में रह गया है, जिसे मालिगैमोड़ (महल वाला टीला–palace-mound) कहा जाता है। वानड़िपट्टम (Vandi-pattam) और मैकावलुपुत्तूर नामक गाँवों में क्रमशः विशेष अवसरों पर मंदिर के लिए आतिशबाजी का काम होता था और चौकीदार रहा करते थे। गंगा के पवित्र जल को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से राजा ने मंदिर के समीप ही एक तालाब का भी निर्माण करवाया था।[1] आजकल इसके आस-पास कच्ची झोपड़ियों को छोड़कर और कुछ भी नहीं है। जैसा कि पर्सी ब्राऊन ने कहा है, जिस मंदिर का निर्माण राजेन्द्र ने

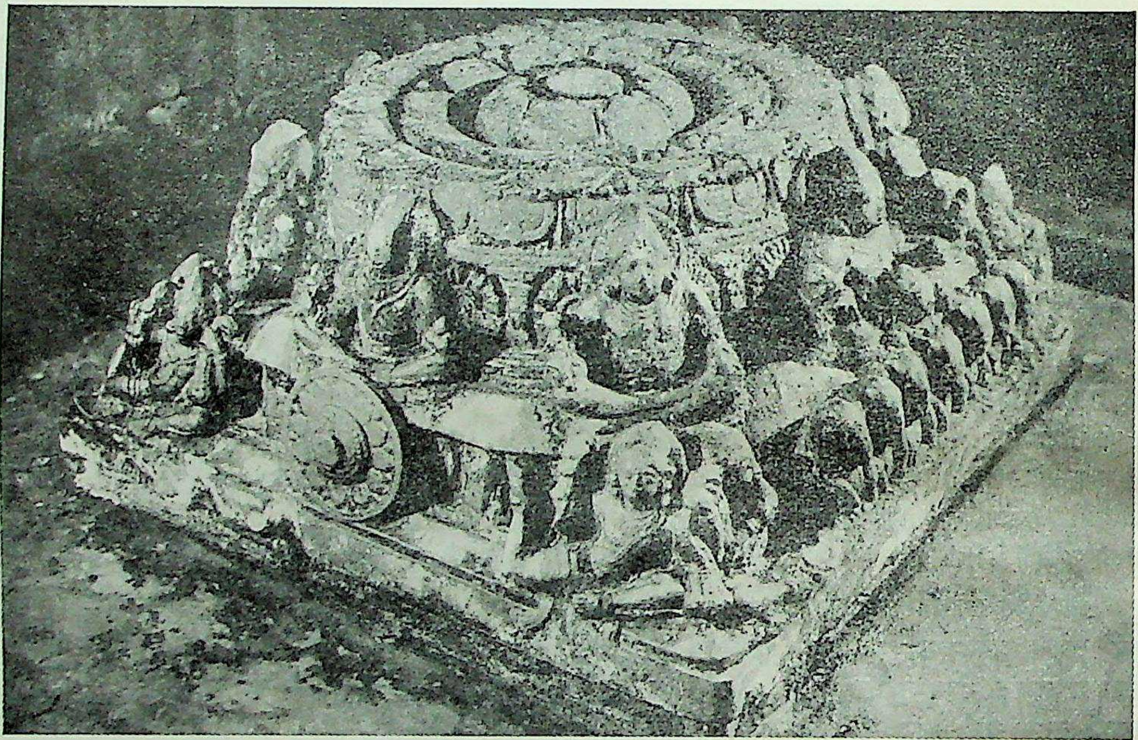

चित्रसंख्या २०. नवग्रह, दारासुरम्

धार्मिक पुण्य के उद्देश्य से करवाया था, वह आज परित्यक्त पड़ा हुआ है, और उसके अस्तित्व के बारे में जाननेवाले भी बहुत कम लोग हैं।[2] समय और भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से गंगैकोण्डचोलपुरम्

1. Sivaramamurti : *The Chola Temples*, p. 20.
2. Brown : *Indian Architecture*, p. 86.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का यह मंदिर तंजौर के बृहदीश्वर मंदिर से अधिक दूर नहीं है। इसका निर्माण १०२५[१] अथवा १०३० ई०[२] में तंजौर से केवल ३८ मील की ही दूरी पर किया गया है। यह स्थान कुंभकोणम् से १७ मील दूर है।

दीवाल से घिरे हुए एक प्रांगण के केन्द्र में स्थित यह मंदिर ३४० फीट लम्बा और ११० फीट चौड़ा है। मंदिर के तीन प्रमुख भाग हैं—महामण्डप (assembly hall), अंतराल (vestibule) और गर्भ-गृह (sanctum)। मण्डप १७५ फीट लम्बा और ९५ फीट चौड़ा है जिसमें १५० पंक्तिबद्ध स्तंभ जमीन से चार फीट ऊँचे ठोस चबूतरे पर स्थित हैं।

महामण्डप और गर्भगृह को जोड़ने के लिए अन्तराल बनाया गया है, जिसमें उत्तर और दक्षिण की ओर दरवाजे हैं। इस भाग में दो पंक्तियों में भारी स्तम्भ बने हुए हैं, जिनकी कुल संख्या आठ है। इसकी छत सपाट है।

१०० फीट लम्बे और १०० फीट चौड़े विमान की ऊँचाई १८६ फीट है।[3] इस प्रकार गंगैकोण्ड-चोलपुरम् का यह मंदिर, तंजौर वाले उदाहरण से ऊँचाई में कम है, यद्यपि आकार में अपेक्षाकृत बड़ा है। इसके विमान के भी तीन भाग—आधार, ढलुआँ भाग और स्तूपिका, हैं। अंतर केवल इतना है कि यहाँ धारियों (zones, tiers) की संख्या केवल आठ है।

बनावट की दृष्टि से, इसमें सौम्यता अधिक है। यह मंदिर पुरुष विशेषताओं से युक्त पूर्ववर्ती उदाहरण की अपेक्षा स्त्रियोचित सुकुमारता से युक्त है।[४] तंजौर के विमानों में बने कोणों का स्थान इस उदाहरण में झुकाव (curves) ने ले लिया है, जिससे यह अधिक आकर्षक लगता है।[५]

दारासुरम् में स्थित ऐरावतेश्वर मंदिर (देखिए चित्र १५) का निर्माण राजराज द्वितीय[६] के राज्यकाल में हुआ था। मंदिर कई प्राकारों (enclosures) से घिरे हुए एक प्रांगण में स्थित है और इसमें अनेक गोपुर बनाए गये थे। मंदिर के विशाल गोपुर का ऊपरी भाग तो पूर्णतः नष्ट हो चुका है और इसके मौलिक-स्वरूप की कल्पना दूसरे और भीतरी प्राकार के गोपुर से की जा सकती है, जो स्तंभों पर आधारित है। मंदिर

1. Coomarswamy : *History of Indian and Indonesian Art*, *p*. 122.
2. Sastri, *op. cit.*, p. 469.
३. वही, पृ० ४६९। पर्सी ब्राउन के अनुसार इसकी कुल ऊँचाई १५० फीट है (द्रष्टव्य : इण्डियन आर्किटेक्चर, पृ० ८६)। एस० के० सरस्वती ने इसे १६० फुट ऊँचा बताया है (देखिए दि स्ट्रगल फॉर एम्पायर, पृ० ६२१)।
4. "There is voluptuousness in the later structure (i.e. the Bṛhadīśvara temple at Gaṅgaikoṇḍacolapuram), the beauty of ripe femininity, in contrast to the masculine strength of the earlier type."
Brown : *op. cit.* p. 86.
5. "Each is the final and absolute vision of its creator made manifest through the medium of structural form, the one symbolizing conscious might, the other sub-conscious grace, but both dictated by that 'divinity which has seized the soul'."
Ibid.
६. देखिए पृ० २०–२१.

५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के विभिन्न अंग हैं—गर्भगृह, मण्डप, मुखमण्डप और अर्धमण्डप। एक मण्डप रथ के आकार का है, जिसे हाथी खींच रहे हैं। मन्दिर का लिंग राजराजेश्वरम् उड्यार नाम से विख्यात है। द्राविड़ शैली की विशेषताओं से युक्त विमान में पाँच मंजिलें हैं। सबसे नीचेवाली मंजिल सबसे ज्यादा चौड़ी और ऊँची है तथा ऊपर वाली मंजिलें चौड़ाई व ऊँचाई में क्रमशः कम होती गई हैं। इसके ऊपर स्तूपिका है, जिसमें थोड़ा बाहर की ओर निकली हुई, आलों की आकृतियाँ हैं।

कई धारियोंवाली ऊँची चौकी पर स्थित यह मंदिर भलीभाँति अलंकृत है। स्तंभों पर मदन-दहन, पार्वती-तपस्या और शिव-विवाह आदि पौराणिक दृश्य अंकित हैं। त्रिपुरान्तक शिव, दक्षयज्ञ–विनाश के दृश्य, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, वायु, नन्दी (बैल), छः सिर वाले कुमार आदि अंकित हैं। कुड्ड और कुम्भपञ्जर की आकृतियाँ भी बनाई गई हैं।

कुलोत्तुंग तृतीय ने कुम्भकोणम् के समीप, त्रिभुवनम् में कम्पहरेश्वर मंदिर बनवाया था। बनावट और अलंकरण की दृष्टि से यह मंदिर अपने पूर्ववर्ती उदाहरणों से समानता रखता है।

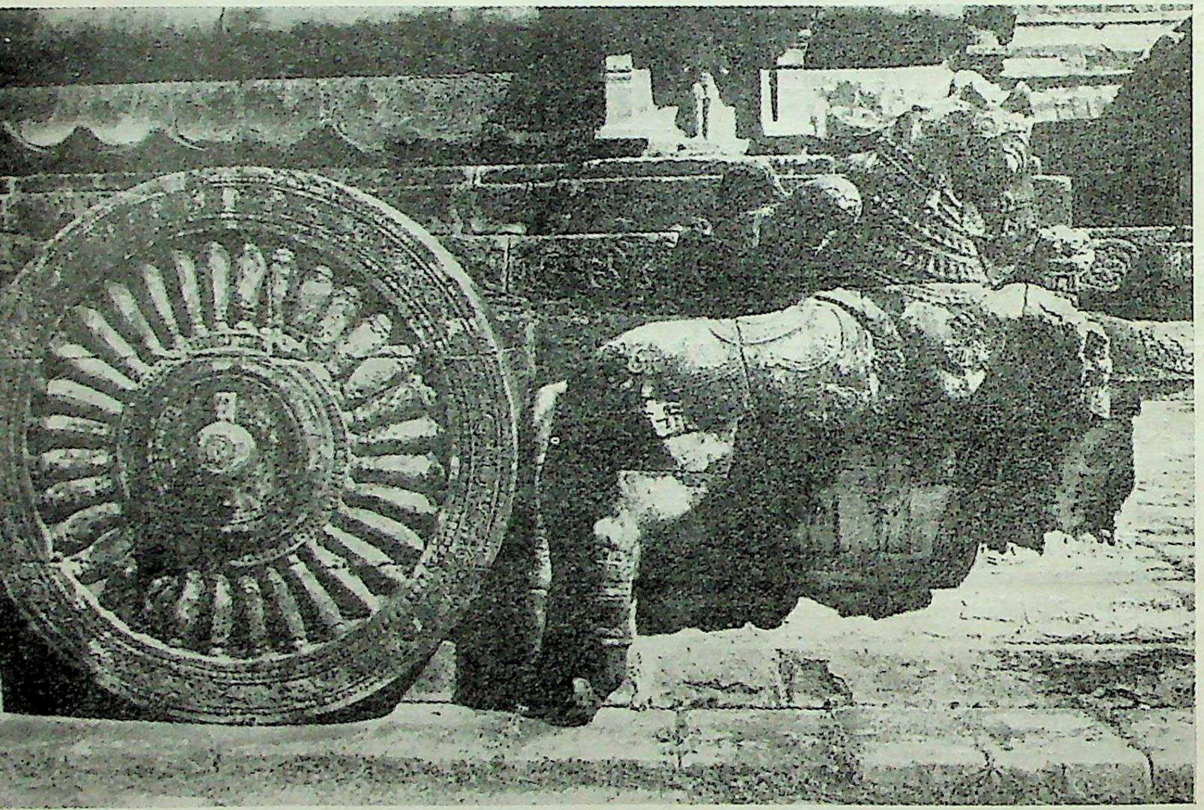

चित्रसंख्या २१. रथ, दारासुरम्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्रकला

चित्रसंख्या २२. राजराज और गुरु कुरुवर देवर, बृहदीश्वर मंदिर, तञ्जौर

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, चोल-काल में चित्रकला के अनेक उदाहरण तत्कालीन मंदिरों में मिलते हैं। चित्र के जिन छः अङ्गों का उल्लेख, यशोधर ने, वात्स्यायन के कामसूत्र पर टीका करते हुए, किया है वे हैं—रूपभेद, अर्थात् आकृतियाँ इस प्रकार हों कि उनमें विभिन्नता स्पष्ट हो सके, प्रमाण अर्थात् वर्ण्य-विषय को उचित अनुपात में बनाना, भाव अर्थात् विभिन्न भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति, लावण्य-योजना अर्थात् चित्रों को सुन्दर बनाना, सादृश्य अर्थात् वर्ण्य-विषय और उसकी आकृति में समानता होना और वर्णिका भंग अर्थात् विषय व प्रसंग के अनुसार रंगों का प्रयोग करना।[1] चोल चित्रकारों की कलाकृतियों में ये सभी विशेषताएँ वर्त्तमान हैं।

विजयालय चोलेश्वर मंदिर[2] में चित्रकला के अनेक उदाहरण हैं, जिनमें नृत्य करती हुई काली, गंधर्व, मुण्डमाल धारण किए हुए भैरव और दुर्गा के चित्र मुख्य हैं। तंजौर के बृहदीश्वर[3] मंदिर के अंधकारयुक्त गलियारे (passage) में तो चित्रकारों ने कमाल ही कर दिखाया है। इसकी सब दीवालें और छत पूर्णरूपेण चित्रित थीं[4]। दुर्भाग्यवश १७ वीं शताब्दी में नायकों के शासन काल में की गई पोताई के कारण भित्ति-चित्रों की इस अमूल्य निधि का अधिकांश नष्ट हो गया है। ज्ञात चित्रों के कुछ उदाहरण निम्नांकित है।

व्याघ्रचर्म पर बैठे हुए योगी शिव जो तटस्थ भाव से दो अप्सराओं का नृत्य देख रहे हैं।

१. देखिए रायकृष्णदास: भारतीय चित्रकला, पृ. ४-७.
२. देखिए पीछे, पृ. १४.
३. देखिए पीछे, पृ. २५-७.
४. इन चित्रों की खोज १९३० में एस. के. गोस्वामी ने की। द्रष्टव्य C. Sivaramamurti: *South Indian Paintings*, p. 82.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विष्णु ताल दे रहे हैं तथा गण व अन्य दैवी संगीतज्ञ विभिन्न वाद्यों को बजा रहे हैं। दर्शक नृत्य देखते हुए बनाए गये हैं। नृत्य करती हुई आकृतियों में मुद्राओं, आसन और भंग तथा शरीर की स्थिति की ओर समुचित ध्यान दिया गया है। अन्यत्र एक घुड़सवार स्वाभाविकता से एक हाथ में रास को पकड़े हुए है और दूसरे में चाबुक।

एक स्थान पर नटराज के एक मंदिर की आकृति बनी हुई है। अन्यत्र विवाहोत्सव के अवसर पर स्त्रियों द्वारा भोजन बनाने का और भोजन के परसे जाने का दृश्य अंकित है। नटराज की एक विशाल आकृति इस संबंध में उल्लेखनीय है। संभवतः राजराज और उसकी तीन रानियाँ, पुजारी, भक्त, कंचुकी, और परिचारक भी अंकित किये गये हैं। इस संबंध में राजराज और उसके गुरु, करुवूर देवर, का चित्र उल्लेखनीय है (चित्र २२)।

एक उदाहरण में शिव के आठ हाथ हैं और सभी में शस्त्रास्त्र हैं। वे असुरों को परास्त करने जा रहे हैं। असुरों के साथ उनकी भयभीत स्त्रियाँ हैं। शिव जिस रथ पर बैठे हैं उसके सारथी ब्रह्मा हैं। साथ में कार्तिकेय को उनके वाहन मोर, गणेश को उनके वाहन चूहे तथा काली को उनके वाहन सिंह के साथ अंकित किया गया है। शिवराममूर्ति के अनुसार यह चोल-कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है, क्योंकि उसमें एक साथ कई प्रकार के भावों को सफलता के साथ व्यक्त किया गया है। त्रिपुरान्तक के चेहरे पर वीरता का भाव (heroic sentiment) है, असुरों की स्त्रियों के चेहरे पर करुणा का तथा अन्य देवताओं के चेहरे पर अचरज का। राजराज स्वयं वीर था और इस कारण यह स्वाभाविक तथा उचित है कि उसने त्रिपुरान्तक का रूप अंकित करवाया है।[१]

इस शैव मंदिर की चित्रकला के विषय भी अधिकांशतः शैव हैं।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि चोल चित्रकारों ने चित्रकला के सभी पहलुओं की ओर ध्यान दिया। वर्ण्य-विषयों के अनुसार आकृतियाँ अंकित की गयीं। यदि उचित प्रमाण न होते तो चित्र प्रभावित करने में सर्वथा असमर्थ होते। भावों की सफल अभिव्यक्ति के विषय में भी हम, त्रिपुरांतक की चर्चा करते हुए देख चुके हैं। कलाकार ये जानते थे कि कला ही अपूर्णताओं और कमियों को पूरा करने की सामर्थ्य रखती है। इसी कारण शरीर को सुन्दर बनाया गया है, उदाहरणार्थ स्त्रियों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग, ओठ, गाल, ठुड्ढी, झुकी हुई कमान जैसी भौंहें, घुँघराले बाल आदि में स्त्री-सौन्दर्य की कल्पना प्रतिबिम्बित है। विभिन्न प्रकार के अलंकारों से शरीर और भी अधिक आकर्षक बनाया गया है। चित्रों को बनाने के पहले दीवाल और छत पर पतला लेप (plaster) किया गया था। तदुपरांत हल्के लाल या भूरे रंग से रूपरेखा बनाकर, आवश्यकतानुसार विभिन्न रंग भर कर, वर्णिका भंग के सुन्दर प्रयोग से चित्रों को और भी अधिक सफल बना दिया गया है।

1. "This painting is the greatest master-piece of the Chola artist...This great panel portrays several sentiments in one : The heroic sentiment in the expression on Tripurāntaka's face and form and in that of the vigorous *rākshasas* in action, the emotion of pity in the sorrowful faces of their women clinging to them in despair; the spirit of wonder in the paraphernalia of gods surrounding Śiva, and the sense of grotesque in the attitude of dwarf *gaṇas* and of Gaṇeśa, hastening on his mouse. The Cholas being great warriors and conquerors, and Rājarāja himself, the greatest of them all, it is in the fitness of things that the theme of Tripurāntaka, the mighty warrior god, is glorified here, virtually as the keynote of the Chola power."
Sivaramamurti : *The Chola Temples*, p. 18.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्तिकला

चित्रसंख्या २३. लक्ष्मी की काँस्य मूर्त्ति

चोल मूर्तिकला को दो मुख्य वर्गों में बाँटा जा सकता है—पत्थर की मूर्तियाँ और काँसे की मूर्तियाँ। पाषाण मूर्तिकला का उल्लेख हम मंदिरों की चर्चा करते समय प्रसंगानुसार करते आये हैं, क्योंकि मूर्तिकला और वास्तुकला का साथ-साथ होना, भारतीय कला की विभिन्न विशेषताओं में एक है। मंदिरों के बाहर (चित्र १४) और अंदर के अलंकरण यह बताते हैं कि किस प्रकार विभिन्न देवी-देवताओं, मनुष्यों तथा पशुओं (चित्र २१) का सफल अंकन, कुशलता के साथ कलाकारों ने किया है। तंजौर के बृहदीश्वर मंदिर, गंगैकोण्डचोलपुरम् के बृहदीश्वर मंदिर और दारासुरम् के ऐरावतेश्वर मंदिर में अनेक सुंदर मूर्तियाँ बनाई गयी थीं। उदाहरणार्थ नवग्रह (चित्र २०), ऋषि-पत्नियाँ (चित्र १८), सरस्वती (चित्र १६) और विष्णु (चित्र १६) उल्लेखनीय हैं।

काँसे की मूर्तियों को बनाने में चोल कलाकारों को अद्वितीय सफलता मिली और उनके उदाहरण संख्या और स्तर दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। उत्तम चोल के राज्यकाल में कोनेरिराजपुरम् (Koneri-rajapuram) में राजमाता शेम्बियन महादेवी द्वारा एक शैव मंदिर बनवाया गया था। इस मंदिर में काँसे की एक मूर्ति की प्रत्यभिज्ञा उपर्युक्त शेम्बियन महादेवी से की गई है।

राजराज प्रथम द्वारा बनवाये गये तञ्जौर के राजराजेश्वर अथवा बृहदीश्वर मंदिर में भी कांस्य मूर्तियाँ थीं। राजराज की बहन कुण्डवै ने अपने पिता, परान्तक द्वितीय और अपनी माँ की स्मृति में उनकी दो मूर्तियाँ बनवाईं। राजराज और उसकी रानी की मूर्तियाँ भी बनवाई गयी थीं, क्योंकि मंदिर में ही अंकित एक अभिलेख में इनके नाम के साथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन मूर्तियों का सूक्ष्म वर्णन भी मिलता है। इनमें तरह-तरह के कीमती रत्न भी जड़े गये थे। ये मूर्तियाँ वहाँ से, पता नहीं कहाँ, चली गयी हैं। मंदिर में वर्त्तमान, राजराज की तथाकथित मूर्ति को अभिलेख में उल्लिखित मौलिक मूर्ति मानना उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि मूर्ति अभिलेख के वर्णन से समानता नहीं रखती

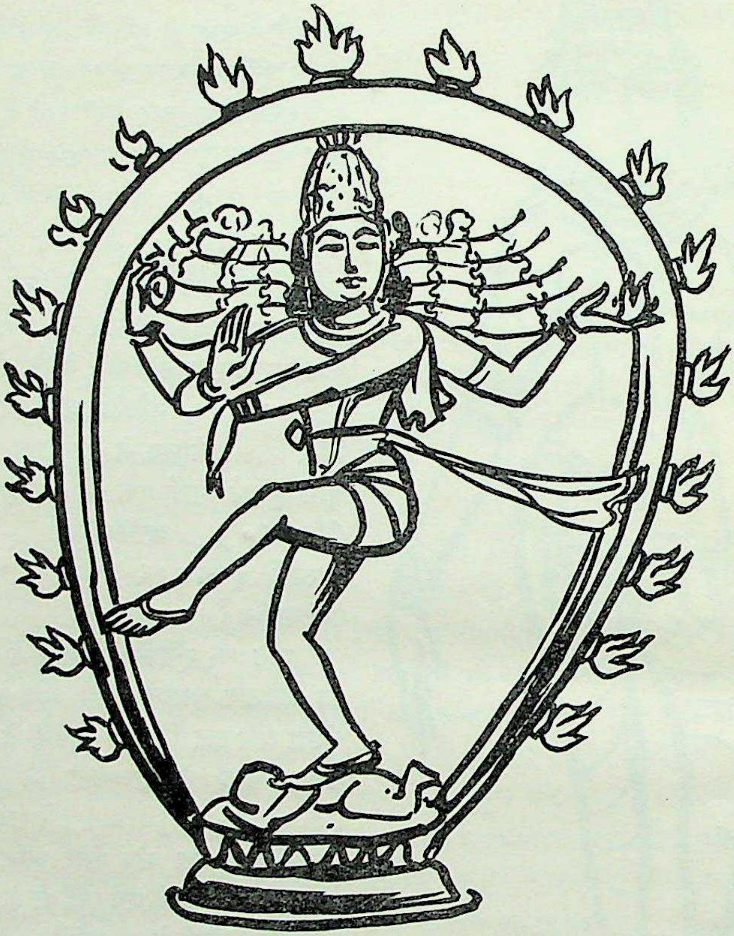

चित्रसंख्या २४. नटराज की काँस्य मूर्त्ति

है। संभवतः मौलिक मूर्तियों के खो जाने पर, उनकी जगह इस मूर्ति ने ले ली। यह मूर्ति उतनी सुंदर भी नहीं है जैसी कि राजराज की समकालीन मूर्तियों को होना चाहिए।[1]

1. "Perhaps, we have to suppose that the original statues were lost, and that the present statue was submitted much later, when the metal worker's art had degenerated greatly in this part of the country. Had the original bronzes survived, they would have been of unique artistic value, for.... they were also specimens of a period to which belong some of the very best South Indian bronzes." Aravamuthan : *Portrait Sculpture in South India*, p. 36.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालहस्ती में स्थित शैव मंदिर में राजराज की पत्नी की ढाई फ़ीट ऊँची काँसे की मूर्ति भी बनवाई गयी थी ।[१] इसी स्थान पर हाथ जोड़े हुए एक स्त्री की मूर्ति और दूसरी एक पुरुष की मूर्ति भी है। मंदिर की छत पर अंकित १११६ ई० के अभिलेख के अनुसार एक महिला ने, अपने भाई, केत्तन अदित्तन, के नाम से दिया जलाने के लिए दान दिया था। संभवतः ये मूर्तियाँ केत्तन अदित्तन और उसकी बहन की हैं।[२] लक्ष्मी और नटराज शिव की मूर्तियाँ भी इस समय बनाई गयी थीं।[3] अभिलेखों में ऐसी अनेक मूर्तियों के उल्लेख हैं, जो अब प्राप्त नहीं हैं।

चोलों की इस काँस्य कला की सफलता के विषय में दो मत नहीं हैं। बैशम (Basham) के शब्दों में तो चोलों की धातु-कला से बढ़कर कोई उदाहरण, भारत ही नहीं, विश्व में अन्यत्र कहीं भी नही है।[४] इसी कारण ज़िमर (Zimmer) भी इसे भारतीय मूर्तिकला का "उत्कृष्ट अध्याय" बताते हैं।[५]

इस प्रकार भारत और विशेष रूप में दक्षिण भारत के राजनैतिक इतिहास में चोल महान् थे और उतनी ही महान् थीं उनकी कलात्मक उपलब्धियाँ, जिनके प्रामाणिक उदाहरण वर्तमान अवशेषों के रूप में आज भी दर्शनीय हैं।

१. वही, चित्र संख्या १२।
२. वही, चित्र संख्या १३।
3. Sastri : *A History of South India*, plates X and XI ; Dereck and Forman : *Indion Sculpture*, plates XXI and XXII.
4. "....It was in South India, especially in the kingdom of the Colas, that the greatest Indian works of art in metal were made, by a School of bronze-casters, which has not been excelled in the world." *The Wonder That Was India*, p. 375.
5. "A Splendid chapter in the history of Hindu Sculpture is that of the bronze images of the Cola period and later, chiefly from the South." *The Art of Indian Asia*, p. 14.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहायक ग्रंथ-सूची

Aiyangar, S. K. : *Ancient India and South Indian History and Culture,* vol. I, Oriental Book Agency, Poona, 1941.

Aravamuthan, T.G. : *Portrait Sculpture in South India,* The India Society, London, 1931.

Balasubrahmanyam, S. R. : Early Chola Art, Part I, Asia Publishing House, Bombay, 1966.

Basham, A. L. : *The Wonder That Was India,* Orient Longmans Ltd., Bombay, 1963.

Brown, P. : *Indian Architecture* (Hindu and Buddhist), D. B. Taraporewala Sons & Co. Pvt. Ltd., Bombay, 1959.

Coomarswamy, A.K : *History of Indian and Indonesian Art,* Dover Publication, : INC. New york, 1965.

Deneck, M. M. : *Indian Sculpture,* Spring books, London, 1963.

Goetz, H. : *India,* Five Thousand years of Indian Art, D.B. Taraporewala Sons & Co. Private Ltd., Bombay, 1964.

Goswamy, A. : *Indian Temple Sculpture,* D. Mehra for Rupa & Co, Calcutta, 1956.

Gravely, F. H. and Ramachandran, T.N. : *The Three Main Styles of Temple Architecture Recognised by the Śilpaśāstras, Bulletin of the Madras Government Museum,* New Series, General Section, Vol. III, Pt. I. (Revised Edition).

Paramasivanandam, A. M. : *Tamilnad Through Ages,* Tamil Kalai Illam, Madras, 1960.

Rai Kṛṣṇadāsa : *Bhārata kī Citrakalā,* Bharatiya Bhandara, Leader Press, Allahabad, 2023 V. S.

Ramachandran, T.N. : Historic India and Her Temples, *Bulletin of the Madras Government Museum*, New Series—General Section, Vol. III, Pt. I (Revised edition).

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Rowland, B.	: *The Art and Architecture of India,* Penguin Books, London, 1953.
Sastri, K. A. N.	: *A History of South India,* Oxford University Press, 1966.
	: *The Colas,* University of Madras, 1955.
Sivaramamurti, C.	: *The Chola Temples,* Archaeological Survey of India, Delhi, 1960.
	: *South Indian Paintings,* National Museum, New Delhi, 1968.
Subrahmanian, N.	: *Sangam Polity,* Asia Publishing House, Bombay, 1966.
Majumdar, R. C. & Pusalkar, A. D	: Ed. *The Age of Imperial Kanauj,* Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, 1955.
	: Ed. *The Struggle for Empire,* Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay 1957.
Zimmer, H.	: *The Art of Indian Asia,* Vols. I and II, Mc Clelland & Stewart Ltd., Toronto, Canada, 1955.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणिका

अकलंक— २०
अग्नि— ३०
अग्रवाल—५
अधिराजन— १८
अनुग्रह— २६
अनुराधपुर— १६
अन्तराल— ७
अन्नैमंगलम्— १६
अमंगा देवी— १८–९
अर्धनारीश्वर— २४, २६
अर्धमण्डप— ७, ३०
अरवमुथन— २७, ३४
अरिञ्जय—१५
अरिमौलि—१५
अशोक—५, १२
अष्टांगहृदयसंहिता— २०
अहनानूरू— १२

आगस्त रौडिन— ११
आजीविक— ६
आदित्य प्रथम— १४, २४
आनन्द— ५
आसन— ३२
आहवमल्ल–कुलकाल— १७

इडैतुरैनाड— १७
इण्डो–आर्यन— ९–१०
इन्द्र— ३०

ईडमुमकोण्ड— १४

उड़ीसा— ७
उत्तम चोल—१५
उरैय्यूर— १४
उल्कोट्टई— २८

ऋषि-पत्नियाँ— ३३

एकबताना—५
एलल— १२

ऐरावतेश्वर मंदिर— २९, ३३
ऐहोल— १०

कडारगोण्ड— १६
कन्नरदेव— १४
कन्नौज— २०
कम्पहरेश्वर मंदिर— ३०
करउर देवर— १३
करिकाल— १२–४
कलिंग— २०
कलिंगत्तुपरार्ण— २०
कलियलूर रुद्रनकण्णार— १३
कल्याण मण्डप— ८
कांगुदेश— १४
काड़वराय— २२
काणे —५
कामसूत्र— ३१
कालकलभ — २२
कार्तिकेय— ३२
कालसी— १२
कालहस्ती— ३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालान्तक—२६
काली—२४, ३१–२
कावेरी—१२, २४
किल्लो वलवन—१२
कुड्—८, ३०
कुडुम्बालूर—१४
कुण्डवै—१६, १८, २६, ३३
कुम्भकोणम्—२४, २९–३०
कुम्भ पंजर—७, ३०
कुमार—३०
कुमारस्वामी—६, २९
कुलशेखर पाण्ड्य—२०–२
कुलोत्तुंग—१९–२०
कुलोत्तुंग (प्रथम)—१८
कुलोत्तुंग (द्वितीय)—२०
कुलोत्तुंग (तृतीय)—२१, ३०
कृष्ण तृतीय—१४
केत्तन आदित्तन—३१
केरल—१४
केरलान्तक—१५
कोडम्बलूर—२५
कोनेरिराजपुरम—३३
कोप पेरुञ्जिंग—२२
कोपेरुनकिंल्ली—१२
कोयम्बतूर—१४
कोरंगनाथ—२४
कोलार—२०
कोलिप्पाक्कै—१७
कोष्ठ पंजर—१७

गंधर्व—३१
गणेश—३२
गद्यकर्णामृत—२२
गर्भगृह—७, २३, २९-३०
गहड़वाल—२०
गंग प्रदेश—१६
गंगवाडि—२०
गंगा—१७, २८
गंगाधर—२६
गंगा नदी—२७
गंगैकौण्ड—१६-७
गंगैकोण्डचोलपुरम्—१७, २४, २७, २६, ३३
गंगैकोण्डचोलेश्वर मंदिर—२७
गंडरादित्य—१४-५
ग्रेवली—६, ८
गोत्ज—११
गोपुर—८, २५, २९
गोस्वामी—११

चरक संहिता—२०
चालुक्य—६, १६-७, १६, २०
चिदम्बरम्—२०
चूडामणि विहार—१६
चेद चिन्नी—१२
चेर—१२, १५
चैत्यगृह—५-६
चोड—१२
चोल देव—१६
चोलराज्यप्रतिष्ठापनाचार्य—२२

जगमोहन—७
जटावर्मन्—२२
जयगोण्ड—१५
जयगोण्डार—२०
जिमर—१२, ३५
जैन धर्म—५-६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डेनेक—३५

तंजौर—११, १३-४, १६, २४-५, २६, ३१, ३३
तक्कणलाड़म्—१७
तमिल साहित्य—१२
तलकाड़—१४
तिरुमल्लै शिलालेख—१७
तिरुवाड़तुरै—२०
तिरुवालंगाडु दानपत्र अभिलेख—१७
तुंगभद्रा—१६
तैलगु चोल—२२
तैलिंग कुलकाल—१५
तोण्डैमान्—२०
तोण्डमंडलम्—२०
त्यागवल्ली—२०
त्यागसमुद्र—२०

थुंगन्तवित—२०

दक्ष—३०
दक्षिणामूर्ति—२३
दारासुरम्—२६, ३३
दुर्गा—२५, ३१
दुर्गामंदिर—१४
देउल—६
देवकुल—६
देवगृह—६
देवतायतन—६
देवस्थान—६
देवागार—६
देवालय—६
देवी—२७
द्राविड़—८-१०, २०

धर्मपाल—१७

नटराज—११, ३२, ३५
नटराज मंदिर—३०, ३२
नन्दी मण्डप—२५
नवग्रह—३३
नर्त्तमलाई—२३
नरसिंह द्वितीय—२२
नागर शैली—८-१०
नागेश्वर मंदिर—२४
नाट्य मंदिर—७
निशुम्भसूदनी—२३
नेगपटम्—१६

पंडिया—१२
पट्टडकल—९
पद्मासन—२७
परकेसरीवर्मन्—१६
पराक्रम पाण्ड्य—२०
पराक्रमबाहु—२०
परान्तक (प्रथम)—१४, १७, २४
परान्तक (द्वितीय)—१३, २५-६, ३३
पल्लव—७, १४, २४
पश्चिमी गंग—१४
पाण्ड्य—१२, १४-५, १७, २०, २२
पाण्ड्य कुलाशनि—१५
पापानाथ मन्दिर—१०
पिल्लै—१२
पुडुकोट्टई—२४
पुहार—१२
पूर्वी चालुक्य—१८-९
पेरुतिरुवलवन—१२
पेरु विरलकिल्ली—१२
पोलोन्नारुव—१६, १९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रमाण— ३१

फाह्यान—५
फोरमैन— ३६
फ्रेंच—११

बंगाल देश—१७
बसाक—१२
बाण—१४, २२
बादामी—६
बालासुब्रह्मण्यम् मंदिर—२४
बुडग—१४
बृहदीश्वर मंदिर—११, १३, १६-७, २५, २७, २९, ३१, ३३
बेल पहडक्कई—१२
बैदुम्ब—१४
बैशम—१०, ३५
बौद्ध धर्म—५–६
बौद्ध स्तूप—६
ब्रह्मा—२४, ३०
ब्राउन—२४-६, २८-९
ब्राह्मण धर्म—५

भंग— ३२
भगवान् बुद्ध—५
भाव—३१
भुजंगपाण्ड्य—१६
भूतिविक्रम केसरी—२५
भूदेवी—२६
भैरव—३१

मण्डप—५-७, २५, २९-३०
मण्णैक्कडक्कम्—१७
मदुरा—१४, १६
मदुरान्तक—१४–५
मदुरान्तकी—२०
मदुरैय्यम्—१४
मदुरैय्युम् पाण्डियन्मुडित्तलैय्यम्—२२
मदुरैकोण्ड—१४
मद्रास—२५
महापरिनिब्बानसुत्त—५
महापरिनिर्वाण—५
महाभारत—१२
महामण्डप—७, २९
महायान—५–६
महावंश—१२
महिषासुरमर्दिनी—२६
महेन्द्र पंचम—१६
मानसार—७-८
मार्तण्ड—१५
मालद्वीप—१६
मुखमण्डप—३०
मुड़िकोण्ड—१६
मुट्टरैय्यर—१४
मुद्रा—३२
मुवर्कोइल—२५
मेम्नोनियन सूसा—५
मैकावलुपुत्तुर—२८
मोम्माडि चोल—१५
मौर्य—५

यशोधर—३१

रथ—६
राजकेशरी—१५
राजमहेन्द्र—१७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजराज (प्रथम)—११, १४-६, १८-९, २५-६, ३२-५
राजराज (द्वितीय)—२०-२, २२
राजराज (तृतीय)—२२
राजराजेश्वरम् उड़यार—३०
राजराजेश्वर मंदिर—२५, ३३
राजसिंह (द्वितीय)—१४
राजसुयं वेत्त पेरुनर किल्ली—१२
राजेन्द्र (प्रथम)—१६, १८-९, २७-८
राजेन्द्र (द्वितीय)—१८
राजेन्द्र (तृतीय)—२२
राजाधिराज (प्रथम)—१७
राजाधिराज (द्वितीय)—१७
रायकृष्णदास—३१
रामचन्द्रन—६, ८
राष्ट्रकूट—१४
रूप-भेद—३१
रोलेंड—५

लंका—१२, १४, १६, २०-१
लक्ष्मी—२४, २६, ३५
लावण्य-योजना—३१
लोकमहादेवी—२६

वनवासी—१७
वर्णिकाभंग—३१-२
वल्लभ वल्लभ—१७
वागमट—२०
वात्स्यायन—३१
वानडिपट्टम—२८
वायु—३०
विक्रम चोल—२०
विक्रमादित्य—१९-२०
विजयबाहु—१९
विजयादित्य सप्तम—१९
विजयालय—१४, १८, २३
विजयालयचोलेश्वर मंदिर—२३, ३१
विमान—२५
विमलादित्य—१६, १८-९
विष्णु—२४, २६-७, ३०, ३२-३
विहार—५-६
वीर पाण्ड्य—२१
वीरभद्र—२६
वीर राजेन्द्र—१७-८
वेंगी—१९-२०
वेसर—८-९

शतपथ ब्राह्मण—५
शक्तिवर्मन—१६
शास्त्री—२०, २४-५, २९, ३५
शिल्पशास्त्र—८
शिव—११, २५-७, ३१-२
शिवपादशेखर—१६
शिवराममूर्ति—२४-५, २८, ३२
शैम्बियन महादेवी—१५, ३३
शैव धर्म—९-११, १४, २३
शुम्बुवराय—१२
श्रीनिवासनल्लूर—२२
श्री देवी—२६
श्री मंदिर—७

संघाराम—६
सत्याश्रय—१६
सरकार—९
सरस्वती—३३
सरस्वती, एस. के.—२४, २६, २९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सलेम—१४
सह्याद्रि—२४
सादृश्य—३१
सिंहल—१२, १७-८, २०
सिंहल-नरेश—१७, २१
सिंहलान्तक—१५
सिंहली—१२, १९, २२
सुंदर चोल—१५
सुप्रभेदागम—९
सुब्रह्मण्यन्—१३
सोमेश्वर—१७-८
सोमेश्वर द्वितीय—१८
स्तूप—५-६, ९
स्तूपिका—२५-६, २९-३०

हरिहर—२६
हीनयान—५-६
होयसल—२२

त्रिचिनॉपॉली—२४
त्रिपुरान्तक-शिव—३०, ३२
त्रिभुवन—२२, ३०
त्रिभुवन चक्रवर्ती—२०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

சோழர்களும் அவர்களுடைய கலையும்

மனோரமா ஜௌஹரி